तरुचिन्तन
2025

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद
(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
देहरादून (उत्तराखण्ड)

तरुचिन्तन 2025

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

श्रीमती कंचन देवी, भा.व.से.
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

संपादक मंडल

प्रधान संपादक

डॉ. सुधीर कुमार
उप महानिदेशक (विस्तार निदेशालय)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

संपादक

डॉ. गीता जोशी
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार प्रभाग)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सहायक संपादक

श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (राजभाषा)

प्रकाशक

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
डाकघर–न्यू फारेस्ट (देहरादून उत्तराखंड)

अस्वीकरण (डिस्क्लेमर)

तरुचिंतन में व्यक्त किए गए विचार लेखक के निजी विचार हैं। इसमें दी गई किसी भी सूचना की सटीकता, संपूर्णता, व्यावहारिकता अथवा सच्चाई के प्रति संपादक मंडल उत्तरदायी नहीं है।

सत्यमेव जयते

कंचन देवी, महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक की कलम से...

हिंदी एक सरल, व्यवहारिक, और जीवंत भाषा होने के साथ ही यह एक वैज्ञानिक भाषा भी है, क्योंकि इसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। हिंदी का शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है, जिसमें अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी, और अन्य भाषाओं के कई शब्द समाहित हैं। आज हिंदी देश के कोने–कोने में बोली जाती है, परंतु प्रदेश स्तर पर अनेक भाषाओं तथा क्षेत्रीय स्तर पर अनेकों बोलियां स्थान विशेष की मातृभाषा होने के कारण भारत के कई प्रदेशों/क्षेत्रों में हिन्दी प्रथम भाषा के रूप में प्रयुक्त नहीं की जाती हैं। केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में सरकारी कार्यों हेतु हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा हिन्दी की व्यापक स्वीकार्यता को ध्यान में रखते हुए, संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान कर इसे आठवीं अनुसूची में शामिल प्रमुख 22 भारतीय भाषाओं की श्रेणी में रखा हैं। संविधान निर्माताओं ने हिंदी के महत्व को स्वीकार करते हुए 14 सितंबर 1949 को सर्वसम्मति से हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी, इसी कारण प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाता हैं। हमारे संविधान के भाग–17 के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा से संबंधित प्रावधान निर्धारित किए गए हैं। अनुच्छेद 351 के तहत संघ को निर्देश दिए गए हैं कि केंद्र सरकार हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार बढ़ाने और उसकी समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक प्रयास करें।

इसी क्रम में राजभाषा के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने और दायित्वों को निर्वहन हेतु परिषद् में राजभाषा कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और पखवाड़ों और अन्य गतिविधियों का नियमित तौर पर आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, मुख्यालय के समस्त संस्थानों के निदेशकों के साथ प्रत्येक तिमाही में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन की प्रगति की समीक्षा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से की जाती है। यह हर्ष का विषय है कि परिषद् राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन में निरंतर प्रगति कर रही है। परिषद् के कई संस्थानों द्वारा राजभाषा विभाग के दिशा–निर्देशों के अनुरूप निर्धारित लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है। जबकि अन्य संस्थान लक्ष्य प्राप्ति के काफी निकट हैं।

परिषद् की वार्षिक हिन्दी पत्रिका ''तरुचिन्तन'' राजभाषा के प्रचार–प्रसार के क्षेत्र में एक सशक्त पहल है। राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु परिषद् और इसके संस्थानों द्वारा विभिन्न हिंदी प्रकाशन के तहत वानिकी समाचार, तरुचिंतन, आफरी दर्पण, वन अनुसंधान ई–पत्रिका, वन संज्ञान, और वर्षारण्यं जैसी हिन्दी पत्रिकाएँ प्रकाशित किए जाते हैं। इनमें से तरुचिंतन एक विशिष्ट हिंदी प्रकाशन है, जिसमें साहित्य, लालित्य, वानिकी एवं विविध विधाओं में सामग्री प्रकाशित की जाती है। परिषद् के अधिकारियों, कर्मचारियों, और उनके परिजनों के वानिकी, पर्यावरण, और अन्य विषयों पर आधारित ज्ञानवर्धक लेख, संस्मरण, कविताएं, कहानियां, और सुरुचिपूर्ण रचनाएं इस पत्रिका में प्रकाशित किए जाते हैं। इसके लिए सभी लेखक प्रशंसा के पात्र हैं।

मैं तरुचिंतन के इस अंक के सफल एवं उत्कृष्ट प्रकाशन हेतु डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक, विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, एवं उनकी टीम को हार्दिक बधाई देती हूँ।

कंचन देवी

डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

प्रधान संपादक की कलम से...

हिंदी भारत के जन–जन की भाषा है, जो हमारी संस्कृति, विरासत और जीवन मूल्यों से जुड़कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करती है। आज हिंदी न केवल साहित्यिक और संवाद की भाषा के रूप में अपनी भूमिका निभा रही है, बल्कि प्रशासन, विधि, विज्ञान, तकनीक, वाणिज्य, तथा पत्रकारिता जैसे क्षेत्रों में भी अपनी उपयोगिता और आवश्यकता को बढ़ा रही है। हिंदी राजभाषा के रूप में केंद्र और हिंदी भाषी राज्यों में सरकारी कार्यों की भाषा है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तक हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। संघ की नीति के अनुसार सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने की आवश्यकता हैं। राजभाषा हिंदी का प्रचार–प्रसार करना सभी सरकारी संस्थानों का संवैधानिक दायित्व है।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद इन दायित्वों के निर्वहन हेतु पूरी तरह सतर्क और प्रतिबद्ध है। परिषद् के कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए कई गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। इनमें राष्ट्रीय स्तर तथा मंत्रालय स्तर पर आयोजित राजभाषा कार्यक्रमों में प्रतिभागिता और त्रैमासिक प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन, राजभाषा प्रगति की समीक्षा हेतु राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति में भागीदारी, अधीनस्थ कार्यालयों के राजभाषा कार्यान्वयन का मूल्यांकन एवं उनका मार्गदर्शन आदि शामिल हैं।

इसी क्रम में, परिषद् द्वारा प्रकाशित वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' में राजभाषा से संबंधित गतिविधियों के साथ–साथ अन्य विषयों को भी शामिल किया जाता है। 'तरुचिंतन' में परिषद् के अधीन सभी संस्थानों और उनके केंद्रों के अधिकारियों, कर्मचारियों और उनके परिवारजनों की भी उत्कृष्ट एवं शोधपरक रचनाओं को स्थान दिया जाता है। पत्रिका के चार मुख्य खंड हैं, जिसमें राजभाषा खंड में परिषद् की राजभाषा गतिविधियों के सचित्र विवरण को शामिल किया गया है। वानिकी खंड में वानिकी और पर्यावरण से संबंधित स्तरीय लेखों को शामिल किया गया है। विविधा खंड के तहत विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक लेखों को शामिल किया गया है। तथा लालित्य खंड में साहित्यिक रचनाओं जैसे स्वरचित कविता, लेख और निबंध आदि को शामिल किया गया है।

'तरुचिंतन' के इस अंक को उत्कृष्ट रूप से संकलित, संपादित और प्रस्तुत करने के लिए मैं डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), श्री शंकर शर्मा, सहायक निदेशक (राजभाषा), और मीडिया एवं विस्तार प्रभाग के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई देता हूँ। साथ ही, इस अंक के सभी लेखकों को उनके ज्ञानवर्धक और उत्कृष्ट लेखों के लिए भी शुभकामनाएं देता हूँ।

मुझे विश्वास है कि 'तरुचिंतन'पत्रिका का यह अंक मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा तथा पाठक वर्ग इसे पढ़कर अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

डॉ. सुधीर कुमार

सत्यमेव जयते

डॉ. गीता जोशी, सहायक महानिदेशक
(मीडिया एवं विस्तार)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट देहरादून– 248006 (उत्तराखंड), भारत

सम्पादक की कलम से......

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली का एक प्रमुख निकाय है, जो आवश्यकता आधारित वानिकी अनुसंधान और विस्तार गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध है। परिषद् अपने 9 संस्थानों और 5 केंद्रों के साथ मिलकर सामंजस्यता के साथ राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं अपेक्षाओं के अनुरूप वानिकी अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए निरंतर प्रयासरत है। इसी के साथ, हमारे वैज्ञानिक, अधिकारी एवं कर्मचारी भारत सरकार की राजभाषा संबंधी नीतियों और अपेक्षाओं को भी प्रभावी ढंग से पूरा करने हेतु सतत प्रयास कर रहे हैं। हिंदी भाषा में कार्य को प्रोत्साहित करने और सभी कार्मिकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के उद्देश्य से परिषद् द्वारा 'तरुचिन्तन' पत्रिका का निरंतर प्रकाशन किया जा रहा है।

इस वार्षिक गृह पत्रिका के 16वें अंक को प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है। परिषद् के विभिन्न संस्थानों एवं केंद्रों में कार्यरत अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा भेजे गए लेखों, कहानियों और कविताओं ने इस अंक को विशेष रूप से समृद्ध बनाया है। 'तरुचिन्तन' न केवल वानिकी अनुसंधान की जानकारी को हिंदी के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास करती है, बल्कि हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार में भी अपनी अहम भूमिका निभा रही है। इस पत्रिका के माध्यम से हितधारकों तक वानिकी संबंधी उपयोगी सूचनाएँ प्रसारित की जाती हैं, जिससे राजभाषा हिंदी को भी बढ़ावा मिलता है।

'तरुचिन्तन' के इस विशेष अंक में वानिकी, विविधा, और लालित्य खंडों के अंतर्गत कुल 34 लेख और 5 कविताएँ शामिल की गई हैं। 'राजभाषा खंड' में परिषद् और इसके संस्थानों द्वारा आयोजित प्रमुख राजभाषा गतिविधियों की संस्थानवार जानकारी प्रस्तुत की गई है। 'वानिकी खंड' में 'बेडु: हिमालयी क्षेत्र का एक बहुमूल्य वृक्ष', '*बेटुला यूटिलिस*, तथा 'बांस: एक महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन' जैसे विषयों पर शोधपरक लेख शामिल हैं। 'विविधा खंड' में जैवविविधता, वन महोत्सव, आत्मविश्वास ही सफलता की कुंजी, और गृह वाटिका जैसे विषयों पर रोचक और प्रेरक लेख प्रकाशित किए गए हैं। वहीं, 'लालित्य खंड' में 'होगा सबका उद्धार...!', 'हिंदी का दर्द' सहित अनेक प्रेरक कविताएँ प्रस्तुत की गई हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'तरुचिन्तन' का यह अंक आपके ज्ञानवर्धन और मनोरंजन में सहायक होगा और पूर्व में प्रकाशित अंकों की तरह आपको पसंद आएगा। मैं सभी पाठकों से आग्रह करती हूँ कि इस पत्रिका को और अधिक सारगर्भित बनाने में अपना बहुमूल्य सुझाव दें। आपके सुझाव और मार्गदर्शन हमारे लिए प्रेरणास्रोत हैं।

– डॉ. गीता जोशी

तरूचिन्तन
2025

संदेश

परिचय

राजभाषा

वानिकी

विविधा

लालित्य

विषय सूची

क्र.सं. पृ.सं.

संदेश

I. संरक्षक की कलम से III

ii. प्रधान संपादक की कलम से V

iii. संपादक की कलम से VII

परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद

1. प्रशासन निदेशालय 02
2. अनुसंधान निदेशालय 03
3. शिक्षा निदेशालय 03
4. विस्तार निदेशालय 03
5. निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) 04

राजभाषा

1. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की राजभाषा गतिविधियां 07
2. भा.वा.अ.शि.प.– शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियां 09
3. भा.वा.अ.शि.प.– वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियां 10
4. भा.वा.अ.शि.प.– हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां 11
5. भा.वा.अ.शि.प.– वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियाँ 12
6. भा.वा.अ.शि.प.– उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियां 13
7. भा.वा.अ.शि.प.– वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियां 14
8. भा.वा.अ.शि.प.– काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू की राजभाषा गतिविधियां 15
9. भा.वा.अ.शि.प.– वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बत्तूर की राजभाषा गतिविधियाँ 16
10. भा.वा.अ.शि.प.– वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की राजभाषा गतिविधियां 17

वानिकी

1. बेड़ू: हिमालयी क्षेत्र का एक बहुमूल्य वृक्ष 19

–डॉ. माला राठौर

2. *बेटुला यूटिलिस:* उच्च ऊंचाई वाले संक्रमण क्षेत्र का महत्वपूर्ण वृक्ष

–डॉ. वनीत जिश्तु, सुश्री मोनिका चौहान और श्री ब्रिजभुषण 22

3. करमल (*डिलेनिया पेंटाग्यना* रॉक्सब.):
मध्य भारत की विशाल औषधीय क्षमता वाली लुप्तप्राय वनप्रजाति 25

–श्री मनीष कुमार विजय

4. *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम:* एक अलंकृत फर्न 28

**–श्री मनीष कुमार, श्री नितेश कौशल,
सुश्री रागिनी भारद्वाज, म. अली हैदर शाह,
डॉ. प्रियंका ठाकुर एवं डॉ. अजय ठाकुर**

5. वर्तमान में कार्बन पदचिह्न के लिए प्रयोगशालाओं का योगदान 31

–डॉ. पी.एस. श्रीकांत

6. *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* (शुकपा): उत्तर पश्चिमी हिमालय के
शीत रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाये जाने वाला महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति 35

–डॉ. स्वर्ण लता

7. *टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम:* उपयोग, प्रभावी बीज भंडारण एवं नर्सरी प्रबंधन 38

–डॉ. नमिता एन.के, डॉ. मनीषा थपलियाल एवं सुश्री दीपिका

8. उत्तर–पूर्व भारत के परिप्रेक्ष्य में वन परिदृश्य में जलागम प्रबंधन 41

–डॉ. निबेदिता गुरू

9. बाँस : एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधन 43

–श्री सौरभ दुबे, श्री अविरल असैया एवं श्री दर्शन के.

10. भूमि चम्पा अथवा श्वेत हल्दी (*केम्फेरिया रोटुंडा* लिन.): एक संक्षिप्त परिचय 47

**–श्री अंकुर ज्योति सैकिया, श्री प्रदीप कुमार हजारिका
एवं श्रीमती इल्लोरा दत्त बोरा**

11. *मोरिंगा कोंकनेंसिस* के विभिन्न बीज स्रोत से तैयार पौध में ऐश वीविल किट के विरुद्ध प्रबंधन 49

**–श्रीमती देशामीणा, कु दिव्या गुर्जर,
श्री सुरेश कुमार मीणा, एवं श्री गणपत देवड़ा**

12. *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम:* खतरा, प्रसार व संरक्षण 52

–डॉ. विनोद कुमार

13. श्योनाक (*ओरोजाइलम इण्डिकम*): एक महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष 57

–श्री नीरज प्रजापती, श्रीमती निकिता राय एवं श्री पंकज कुमार

14. सैटिनवुड वृक्ष (*क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया*): सेमिलोपर (*अचिया जनाटा*) के खिलाफ पौधे के अर्क की आहाररोधी संपत्ति 59

—श्रीमती दीपा एम, श्री डी.एस.एस.प्रसाद एवं श्री एन. युवराज प्रवीण

15. *सैलिक्स* (विलो) के बहुउपयोगी पौधेः परिचय एवं महत्व 62

—डॉ. बालकृष्ण तिवारी, श्री मंजीत कुमार, श्री नीरज शर्मा एवं डॉ. संदीप शर्मा

16. अश्वगंधाः किसानों के लिए जलवायु परिवर्तन परिदृश्यों के मद्देनज़र एक संभावित लाभदायक औषधीय पौधा 65

—श्री निखिल वर्मा, डॉ नसीर मोहम्मद, श्री प्रियेश दुबे एवं डॉ. विश्वजीत शर्मा

विविधा

1. जैवविविधताः पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने वाली नींव में एक महत्वपूर्ण स्तंभ 69

—श्री डी. शिवसत्य प्रसाद एवं श्री वरूण सिंह

2. काष्ठ शरीर विज्ञान – एक परिचय 71

—डॉ. धीरेन्द्र कुमार, श्री धीरज कुमार एवं डॉ. आशुतोष पाठक

3. वन महोत्सव– वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का पारस्परिक समावेशन एवं नवाचार 73

—श्री सत्यव्रत सिंह एवं श्रीमती अनिता तोमर

4. शहरों के विकास के लिए वनों की कटाई–संघर्ष या सहयोग 76

—डॉ.कुमुद दुबे, सुश्री दर्शिता रावत एवं श्री आशीष कुमार

5. आत्मविश्वास ही सफलता की कुंजी 79

—श्रीमती पूंगोंदै कृष्णन

6. एल्डर आधारित पारंपरिक कृषि प्रणालीः जलवायु परिवर्तन के लिए प्रकृति–आधारित समाधान 81

—डॉ. मनीष कुमार सिंह एवं डॉ. हंसराज

7. खनन परियोजना में वन भूमि के गैर–वानिकी उपयोग का वनवासी समुदाय की आजीविका पर प्रभाव और समाधान के लिए अधिनियमों की भूमिका 84

—श्री चन्द्र शर्मा

8. गृह वाटिका एवं इसका महत्व 87

—डॉ. जोगिन्द्र सिंह चौहान एवं श्री कुलवन्त राय गुलशन

9. ट्रीजीनी– भा.वा.अ.शि.प – व.आ.वृ.प्र.सं की एक अंतर सक्रिय डिजिटल प्लेटफॉर्म पहल 90
–डॉ. एस. सरवणन, श्री पी. चंद्रशेखरन एवं श्रीमती आर. जी. अनीता

10. बर्लवुड ब्लैक मार्केट: भारत में पेड़ों के लिए एक नया खतरा 92
–श्री लोकेंदर शर्मा

11. माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण: वर्तमान परिप्रेक्ष्य और समाधान 95
–डॉ. राजेश कुमार मिश्रा

12. मिट्टी जीवित है क्या? 98
–डॉ. जंगम दीपिका

13. राजस्थान के अर्द्ध शुष्क जिले – जोधपुर में चारा प्रबंधन: एक अवलोकन 100
–श्री एस.आर. बलोच एवं सुश्री वीनू महेचा

14. रीछ (*मेलर्सस उर्सिनस*) की आहार पारिस्थितिकी और बीज फैलाव में इसकी भूमिका 103
–डॉ. टी.एन. मनोहारा, डॉ एम. बी. सिंह,

15. वृक्ष..... भारतीय डाक की नजर से.... 105
–सुश्री मन्नू सरोज

16. हाइड्रोसीडिंग और वन संरक्षण में इसकी भूमिका 108
–श्री विवेक चौहान

17. झारखण्ड में मैन्ग्रोव प्रजाति, *हेरिटिएरा फाम्स* (सुन्दरी) का रोपण 112
–श्री रवि शंकर प्रसाद एवं श्री मंजु एल. जोजो

18. तेजपुर, असम में बांस के बीज के उपयोग की परंपरा 114
–डॉ. मिताली मैहता, म. हिबजुर रहमान और श्री लक्ष्य बोरूवा

लालित्य

1. होगा सबका उद्धार...! **–श्री विवेक चौहान** 117

2. नयी हरियाली **–श्री कृष्ण मुरारी** 118

3. अहंकार क्यों? **–सुश्री अम्बिका बुदियाल** 119

4. आखिर कब तक? **–श्रीमती सीमा राणा** 120

5. हिंदी का दर्द **–श्री विष्णु देव पण्डित** 121

परिचय

1. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

वानिकी अनुसंधान की यात्रा की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के अंत में भारत में वैज्ञानिक वानिकी के आगमन और 1878 में देहरादून में वन विद्यालय की स्थापना के साथ हुई थी। बाद में 5 जून 1906 को देश में वानिकी अनुसंधान को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से तत्कालीन शासन द्वारा इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की गई। इसके पश्चात देश के वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार आवश्यकताओं व पर्यावरण हितों को देखते हुए 1986 में एक छत्र संगठन के रूप में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) की स्थापना की गई। भा.वा.अ.शि.प. को 1 जून 1991 को तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अंतर्गत एक स्वायत्त परिषद् घोषित किया गया और सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम 1860 के अंतर्गत एक सोसाइटी के रूप में पंजीकृत किया गया।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् सोसाइटी की आम सभा, भा.वा.अ.शि.प. की सर्वोच्च प्राधिकारी है, जिसके प्रमुख, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के केंद्रीय मंत्री होते हैं। परिषद् के महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. सोसाइटी के मुख्य कार्यकारी होते हैं।

भा.वा.अ.शि.प. का मुख्यालय उत्तराखंड राज्य की राजधानी देहरादून में है। परिषद्, राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान प्रणाली में एक सर्वोच्च निकाय है। यह परिषद् वानिकी अनुसंधान, वानिकी शिक्षा एवं विस्तार हेतु समर्पित है। परिषद के अंतर्गत देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में 9 अनुसंधान संस्थान और 5 केंद्र कार्यरत हैं। इनमें से प्रत्येक संस्थान का अपना खुद का एक इतिहास है और ये अनुसंधान संस्थान अपने क्षेत्र की विशेष भौगोलिक उपस्थिति में उपजी वानिकी पर शोध के लिए जाना माना नाम है। तथा भा.वा.अ.शि.प. के छत्र तले अपने क्षेत्राधिकार में वानिकी क्षेत्र में अनुसंधान, विस्तार और शिक्षा का निर्देशन और प्रबंधन कर रहे हैं। ये क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थान जोधपुर, देहरादून, शिमला, हैदराबाद, कोयम्बत्तूर, रांची, बेंगलुरू, जोरहाट एवं जबलपुर में स्थित हैं। इनसे संबंधित अनुसंधान केंद्र अगरतला, आइज़ॉल, प्रयागराज, छिंदवाड़ा और विशाखापत्तनम् में स्थित हैं।

संकल्पना

वन पारितंत्र के संरक्षण और वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से दीर्घकालिक पारिस्थितिक स्थिरता, संवहनीय विकास और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना।

लक्ष्य

वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा के माध्यम से पारिस्थितिक सुरक्षा, बेहतर उत्पादकता, आजीविका संवर्धन और वन संसाधनों के संवहनीय उपयोग हेतु वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकियों को सृजित, उन्नत और प्रसारित करना।

भा.वा.अ.शि.प., मुख्यालय में अनुसंधान एवं परियोजनाओं से संबंधित कार्यों को सुचारु रूप से परिचालित करने हेतु निदेशालयों की स्थापना की गयी है। इन निदेशालयों के प्रमुख उप महानिदेशक होते हैं जो संबंधित विषयों के बारे में महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. को सलाह प्रदान करते हैं। मुख्यालय स्थित विभिन्न निदेशालयों का परिचय निम्नलिखित है।

प्रशासन निदेशालय

प्रशासन निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (प्रशासन) होते हैं। निदेशालय परिषद् के बजट संबंधित मामलों, भा.वा. अ.शि.प. मुख्यालय हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं की अधिप्राप्ति तथा पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली के सम्मुख प्रस्तुत करने हेतु परिषद् की मांग एवं व्यय का संकलन संबंधित मामलों को देखता है।

निदेशालय तीन प्रशासनिक प्रभागों यथा सामान्य प्रशासन प्रभाग एवं वित्त जिसके प्रमुख सहायक महानिदेशक (प्रशासन) होते हैं, सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग, तथा वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, का संचालन करता है।

प्रशासनिक कार्य को मुख्य रूप से 7 अनुभागों में विभाजित किया गया है यथा लेखा अनुभाग, बजट अनुभाग, सामान्य प्रशासन एवं निर्माण कार्य, क्रय अनुभाग, भंडार अनुभाग, वाहन अनुभाग तथा केयरटेकर अनुभाग। इसके साथ हि पेंशन प्रकोष्ठ एवं पीएचएस प्रकोष्ठ का संचालन भी प्रशासन निदेशालय के अंतर्गत किया जाता है। प्रशासन निदेशालय के दो प्रमुख प्रभाग निम्नानुसार हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग

भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय में सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग अनुसंधान, प्रशासनिक और अन्य गतिविधियों को सहायता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ष 2023–24 के दौरान की गईं नई पहलें निम्न हैः

1. भा.वा.अ.शि.प. पेंशन पोर्टल का कार्यान्वयनः

सूचना प्रौद्योगिकी प्रभाग द्वारा पेंशन पोर्टल विकसित, अभिकल्पित और कार्यान्वित किया गया है और इसका एक मोबाइल एप्लीकेशन भी विकसित किया गया है। पोर्टल का यूआरएल https://pensionportal.icfre.org है। सभी पुराने पेंशनभोगियों का डेटा पोर्टल पर अपलोड किया गया है तथा पोर्टल पर नए पेंशनभोगियों का पेंशन पंजीकरण, पेंशन आवेदन स्वीकृति और पीपीओ जनरेशन किया जा रहा है। भा.वा.अ.शि.प. पेंशन पोर्टल पर 1413 पेंशनभोगियों की जानकारी उपलब्ध है।

2. भा.वा.अ.शि.प. डाटा सेंटर (सर्वर फार्म)

भा.वा.अ.शि.प. डेटा सेंटर सेवाएं दिनांक 01.02.2010 से भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय तथा देश भर में फैले भा.वा.अ.शि. प. संस्थानों और केंद्रों पर 24*7*365 उपलब्ध हैं। डेटा सेंटर द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ सेवाएँ मेल, इंटरनेट, वेब, वीडियो–कांफ्रेंसिंग, एंटीवायरस, एफटीपी, नेटवर्क सुरक्षा प्रणाली, डेटाबेस, बिल्डिंग मैनेजमेंट सिस्टम (बीएमएस), वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क (वीपीएन) सेवाएँ, पुश मेल सेवा, वेब कास्टिंग आदि हैं। डेटा सेंटर पर 74 वेब एप्लिकेशन/वेबसाइट होस्ट की गई हैं। कुल 1969 सक्रिय ई–मेल खाते मेल सर्वर पर उपलब्ध हैं।

यह प्रभाग लगभग 60 वेबसाइटों/ डाटाबेस/ सीएमएस/ एप्लीकेशन जिनमें भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों के एप्लीकेशन और वेबसाइटें भी शामिल हैं, और लाइव सर्वर पर हैं, का भी अनुरक्षण करता है।

प्रभाग द्वारा भा.वा.अ.शि.प. की वेबसाइटों (http://icfre.gov.in और https://hindi.icfre.gov.in) को तुरंत अद्यतित किया जाता है। 1 अप्रैल 2023 से 31 मार्च 2024 के दौरान भा.वा.अ.शि. प. की अंग्रेजी और हिंदी वेबसाइटों में कुल 1676 अद्यतन किए गए।

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग

वानिकी सांख्यिकी प्रभाग, प्रशासन निदेशालय के अंतर्गत आता है। जिसका उद्देश्य वानिकी डाटा का मूल्यांकन तथा विश्लेषण करना है। वानिकी सांख्यिकी प्रभाग ने 103 संकेतकों पर विचार करते हुए भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों का वैज्ञानिक मूल्यांकन किया।

अनुसंधान निदेशालय

अनुसंधान निदेशालय के प्रमुख उप महानिदेशक (अनुसंधान) होते हैं और दो सहायक महानिदेशक (अनुसंधान योजना), सहायक महानिदेशक (अनुश्रवण एवं मूल्यांकन) और अन्य वैज्ञानिक उनकी सहायता करते हैं। निदेशालय सुनिश्चित करता है कि भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों द्वारा निष्पादित सभी अनुसंधान परियोजनाएं आवश्यकता आधारित और क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय वानिकी अनुसंधान समस्या को संबोधित करने वाली हों।

वर्ष 2023–24 के दौरान निदेशालय द्वारा आयोजित अनुसंधान सलाहकार समूह (आरएजी) और अनुसंधान योजना समिति (आरपीसी) की बैठकों का विवरण इस प्रकार हैं।

भा.वा.अ.शि.प. संस्थानों की अनुसंधान सलाहकार समूह की बैठकें 18 सितंबर से 17 अक्टूबर 2023 के बीच आयोजित की गयी और 52 अनुसंधान परियोजनाएं प्रस्तुत की गई, जिनमें से 45 परियोजनाओं को अंतिम अनुमोदन के लिए आरपीसी के विचारार्थ अनुशंसित किया गया।

भा.वा.अ.शि.प. की चौबीसवीं (XXIV) अनुसंधान योजना समिति 08 और 09 फरवरी 2024 को आयोजित की गयी। चौबीसवीं अनुसंधान योजना समिति ने 20 नए अनुसंधान परियोजनाओं को मंजूरी दी तथा 79 वर्तमान अनुसंधान परियोजनाओं की प्रगति की समीक्षा की गई।

शिक्षा निदेशालय

शिक्षा निदेशालय मुख्य रूप से वानिकी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों में उच्च शैक्षणिक मानकों के लिए देश में वानिकी शिक्षा को बढ़ावा देने, समन्वय करने और सहायता करने, विभिन्न घरेलू एवं विदेशी प्रशिक्षणों का संचालन एवं समन्वयन कर परिषद में कार्यरत वैज्ञानिकों, तकनीकी, कार्यकारी एवं अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम चलाने, वन, वन्य जीव और पर्यावरण के क्षेत्र में नीति निर्माण करने और नीति निर्माताओं के लिए इनपुट प्रदान करने तथा परिषद के तकनीकी संवर्ग के श्रेणी–III कर्मियों और वैज्ञानिकों की भर्ती और पदोन्नति करने के लिए अधिदेशित है।

इस वर्ष मानव संसाधन विकास योजना के अंतर्गत शिक्षा निदेशालय द्वारा कुल 10 प्रशिक्षण आयोजित किए गए। इसमें 21 वैज्ञानिकों के लिए 3 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। 20 तकनीकी अधिकारियों के लिए 1 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। प्रशासनिक स्तर के 135 कर्मचारियों के लिए 4 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। इसके अतिरिक्त, 68 वैज्ञानिक–बी और तकनीकी सहायकों, प्रत्येक के लिए एक–एक, प्रेरण प्रशिक्षण आयोजित किए गए।

इसके साथ ही आईजीओटी पोर्टल पर वानिकी ई–लर्निंग मॉड्यूल प्रकाशित करके भारत सरकार के मिशन कर्मयोगी के अंतर्गत उपलब्ध कराया गया है। इस वित्तीय वर्ष के दौरान, 560 कर्मचारियों ने आईजीओटी पोर्टल पर पंजीकरण कराया और 502 आईजीओटी मॉड्यूल पुरे किए गए हैं।

विस्तार निदेशालय

विस्तार निदेशालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के संस्थानों और केंद्रों की विभिन्न तरह की विस्तार गतिविधियों का समन्वय और विस्तार कार्यनीतियों का विकास करता है। यह पर्यावरण प्रबंधन के क्षेत्र में भी सक्रिय भूमिका निभाता है और विभिन्न संस्थानों को पर्यावरण प्रबंधन से जुड़ी परामर्श सेवाएं प्रदान करता है। निदेशालय अपने दो प्रभागों, मीडिया एवं विस्तार प्रभाग तथा पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग की मदद से नियत लक्ष्य समूहों, राज्य वन विभागों, उद्योगों, शिल्पकारों, आदि के लिए उपयुक्त मॉडलों सहित प्रौद्योगिकी पैकेज हस्तांतरित करने हेतु प्रयासरत रहता है।

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार गतिविधियों का समन्वय, एवं मूल्यांकन करता है। इसके साथ ही प्रभाग द्वारा अनुश्रवण एवं योजना का कार्य भी किया जाता है। परिषद् का वार्षिक प्रतिवेदन एवं इसका हिंदी अनुवाद, मासिक न्यूजलेटर, मासिक वानिकी समाचार, त्रैमासिक राजभाषा रिपोर्ट, मासिक मानिटरन, वार्षिक राजभाषा पत्रिका तरूचिंतन तथा अन्य प्रकाशनों का कार्य भी प्रभाग

द्वारा किया जाता है। यह प्रभाग राजभाषा से संबंधित गतिविधियों यथा राजभाषा क्रियान्वयन, हिंदी कार्यशालाओं, हिंदी पखवाड़ा एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन, राजभाषा पुरस्कारों का निर्णय एवं राजभाषा हिंदी से जुड़ी विभिन्न रिपोर्टों का संकलन एवं संपादन का कार्य भी करता है।

पर्यावरण प्रबंधन प्रभाग

यह प्रभाग पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित परियोजनाओं के अंतर्गत वैज्ञानिक परामर्श सेवाएं प्रदान करता है। यह सेवाएं देश में विभिन्न हितधारकों जैसे पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार,कर्नाटक सरकार, राज्य वन विभाग, छत्तीसगढ सरकार, एनटीपीसी लिमिटेड, नोएडा, कोल इण्डिया लिमिटेड, कोलकाता, वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड, महाराष्ट्र, जे एस डब्ल्यू इनर्जी लिमिटेड, एन एम डी सी, बछेली कॉम्पलैक्स, उड़ीसा वन विभाग इत्यादि को प्रदान की जाती हैं।

निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग)

निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों से वानिकी अनुसंधान पर सहयोग हेतु संपर्क एवं समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर करने, भा.वा.अ.शि.प. में क्षेत्रवार विशेषज्ञों की पहचान करने तथा भावी निधिकरण अभिकरणों के साथ विषय और थ्रस्ट एरिया आधारित परियोजनाओं का निर्माण और कार्यान्वयन समन्वय करने, बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं से संबंधित मुद्दों पर कार्यशाला, संगोष्ठी और सम्मेलन जैसे कार्यक्रमों को संचालित करने, संबंधित निधिकरण अभिकरणों से बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के प्रस्तुतीकरण एवं अनुमोदन का समन्वय, निधिकरण अभिकरण के मापदंडों/मानकों के अनुरूप बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं की प्रगति की निगरानी करने तथा परिचालन में बाह्य सहायता प्राप्त परियोजनाओं के आंकड़ों को संभालने के कार्य हेतु अधिदेशित है।

जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग

वर्ष 2023–24 के दौरान मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के परियोजना क्षेत्रों में एकीकृत कृषि विकास के लिए जल उपयोग दक्षता और उत्पादकता बढ़ाने के लिए वृक्ष आधारित कृषि प्रणाली, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली और अजोला की खेती एवं वाडी प्रणाली पर सतत भूमि एवं पारितंत्र प्रबंधन प्रणालियों को बढ़ाया गया।

इस अवधि के दौरान पारितंत्र सेवाएं सुधार परियोजना, सतत भूमि उत्पादकता के लिए जैव कीटनाशकों और जैव उर्वरकों का उत्पादन एवं उपयोग, वन कार्बन स्टॉक मापन, निगरानी और क्षमता निर्माण, सतत भूमि और पारितंत्र प्रबंधन के लिए उन्नत चूल्हा, आदि पर वृत चित्र निर्माण किए गए।

प्रभाग द्वारा निम्न परियोजनाएं पूर्ण की गइः–

- भारत में रेड्ड प्लस के कार्यान्वयन के लिए तत्परता का निष्पादन ।
- पारितंत्र सेवाएं सुधार परियोजना।
- पारिस्थितिक स्थिरता और उत्पादकता वृद्धि के लिए वानिकी अनुसंधान को मजबूत करने पर आई.सी.एफ. आर.ई. योजना के तहत राज्य रेड्ड प्लस कार्य योजनाओं को विकसित करने के लिए राज्य वन विभागों की क्षमता निर्माण।

प्रभाग द्वारा निम्न परियोजना प्रस्ताव विकसित किए गएः–

- ग्रीन क्रेडिट कार्यक्रम के संचालन के लिए भारतीय वानिकी अनसुधान एवं शिक्षा परिषद् में कार्यक्रम प्रबंधन इकाई की स्थापना।
- एडी कोवैरिएंस–आधारित कार्बन फ्लक्स टॉवरों के माध्यम से मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के उष्णकटिबंधीय शुष्क पर्णपाती जंगलों में कार्बन फ्लक्स का मापन।

सतत भूमि प्रबंधन पर उत्कृष्टता केंद्र

भूमि क्षरण से संबंधित मुद्दों को संबोधित करने के लिए निदेशक (अंतर्राष्ट्रीय सहयोग) के अंतर्गत परिषद में सतत भूमि प्रबंधन पर उत्कृष्टता केंद्र (सीओई–एसएलएम) की स्थापना की गई। सतत भूमि प्रबंधन के बारे में जागरूकता, रूपरेखा और मान्यता बढ़ाने के अपने मिशन के भाग के रूप में केंद्र ने अंतर्राष्ट्रीय (02), राष्ट्रीय (02)

प्रशिक्षण कार्यक्रम और अंतर्राष्ट्रीय (02), राष्ट्रीय (02) वेबिनार/कार्यशालाएं सफलतापूर्वक आयोजित की। इसके अतिरिक्त, खनन प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन पर सर्वोत्तम पद्धतियों का संग्रह खनन प्रभावित क्षेत्रों और वनाग्नि प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन पर सर्वोत्तम पद्धतियों पर ब्रोशर तैयार कर प्रकाशित किया गया और वनाग्नि प्रभावित क्षेत्रों के पुनर्स्थापन पर सर्वोत्तम पद्धतियों का संग्रह संपादित और प्रकाशित किया गया। एसएलएम पद्धतियों का संग्रह, भारत में भूमि क्षरण तटस्थता प्राप्त करने के मार्गों पर तकनीकी पेपर, सतत भूमि प्रबंधन पर सीओई–एसएलएम न्यूजलेटर का पहला खंड आदि सहित कई प्रमुख दस्तावेज प्रकाशित किए गए।

ग्रीन क्रेडिट प्रोग्राम

ग्रीन क्रेडिट नियम, 2023 केंद्र सरकार द्वारा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अंतर्गत 12 अक्टूबर 2023 को अधिसूचित किया गया था। इन नियमों में स्वैच्छिक पर्यावरणीय सकारात्मक कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए एक तंत्र स्थापित किया गया, जिसके परिणाम स्वरूप ग्रीन क्रेडिट जारी किए जाएँगे। भा.वा.अ.शि.प. को ग्रीन क्रेडिट प्रोग्राम का प्रशासक नियुक्त किया गया तथा यह जीसीपी के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है, जिसमें जीसीपी के लिए गतिविधि–विशिष्ट कार्यप्रणाली और आईटी अवसंरचना (पोर्टल/रजिस्ट्री) का विकास, गतिविधियों का पंजीकरण, ग्रीन क्रेडिट जारी करना, अनुश्रवण और लेखा परीक्षा शामिल है। जीसीपी पोर्टल पर 13 पीएसयू ने अपना पंजीकरण पूरा कर लिया है तथा जीसीपी के अंतर्गत 10 राज्य वन विभागों ने कार्यान्वयन एजेंसियों के रूप में पंजीकरण किया।

कुल 279 भूमि पार्सल पंजीकृत किए गए, जिनका कुल क्षेत्रफल 8,332 हेक्टेयर है। इनमें से 148 पार्सल (3,887 हेक्टेयर) को भा.वा.अ.शि.प. द्वारा अनुमोदित किया गया।

राजभाषा

2. भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद (मुख्यालय) की राजभाषा गतिविधियां

हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् एवं इसके अधीन संस्थानों में विभिन्न राजभाषा गतिविधियां संचालित की जाती है। भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय एवं इसके संस्थानों की वर्ष 2024 की प्रमुख राजभाषा गतिविधियां निम्नलिखित हैं।

परिषद मुख्यालय में दिनांक 14 से 30 सितंबर 2024 तक हर्षोल्लास के साथ हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। समापन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अपनी गरिमामयी उपस्थिति से सभा का मान बढ़ाते हुए श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. महोदया ने परिषद में पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में कार्मिकों की भागीदारी की सराहना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने पखवाड़े के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को नगद पुरस्कार एवं प्रतिभागिता प्रमाण पत्र प्रदान किए। कार्यक्रम में "सुर–संगम" कार्यक्रम भी आयोजित किया गया जिसमें मुख्यालय एवं बाहर से आमंत्रित कलाकारों द्वारा मधुरमय संगीत प्रस्तुति दी गई।

समापन समारोह में डॉ. सुधीर कुमार, उप महानिदेशक (विस्तार) ने अपने स्वागत भाषण में सभा को संबोधित करते हुए कहा कि वर्ष 2024 में हिन्दी पखवाड़ा के दौरान कुल 7 प्रतियोगिताएं यथा; टिप्पण लेखन, निबंध, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, प्रश्नोत्तरी (क्विज), हिंदी टंकण, अंत्याक्षरी एवं स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ का आयोजन किया गया, जिनमें कुल 135 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। कार्यक्रम के समापन पर भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत वर्ष 2023–24 के दौरान अपने शासकीय कार्यों में हिन्दी क्रियान्वयन में समग्र प्रदर्शन हेतु मुख्यालय के 09 कार्मिकों एवं 03 संविदाकर्मियों को भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2023–24 अवधि में राजभाषा हिन्दी में उत्कृष्ट कार्य करने वाले संस्थानों को भी पुरस्कृत किया गया। "क" क्षेत्र के संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प. –उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर तथा "ग" क्षेत्र के संस्थानों में भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट को राजभाषा शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

राजभाषा हिंदी में लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए परिषद प्रत्येक वर्ष हिन्दी पत्रिका तरूचिंतन का प्रकाशन करती है। दिनांक 21–22 मार्च, 2024 को वन विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित राजभाषा प्रशिक्षण कार्यशाला में श्रीमती उर्मिला हरित, निदेशक (राजभाषा), पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के कर–कमलों से "तरूचिंतन–2023" का विमोचन किया गया। इसके अतिरिक्त, वर्तमान में परिषद् के संस्थानों में कुल 04 अन्य हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जा रहा हैं।

कार्यालयीन प्रयोग में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने हेतु मुख्यालय एवं संस्थानों में प्रत्येक तिमाही में राजभाषा हिन्दी कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं। वर्ष 2024 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में कुल 41 कार्यशालाएँ आयोजित की गयीं जिनमें 179 अधिकारी एवं 699 कर्मचारी प्रशिक्षित किए गए। तथा मंत्रालय द्वारा आयोजित एक कार्यशाला में ऑनलाइन माध्यम से प्रतिभागिता की गई।

हिंदी के सुचारू कार्यान्वयन और कार्यों की समीक्षा हेतु मुख्यालय एवं संस्थानों में नियमित तौर पर त्रैमासिक रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें आयोजित की जाती है। वर्ष 2024 के दौरान मुख्यालय एवं संस्थानों में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की कुल 39 बैठकें आयोजित की गयीं। वर्ष के दौरान 14–15 सितंबर 2024 को भारत मंडपम, नई दिल्ली में आयोजित हिंदी दिवस तथा चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में भी भाग लिया गया।

हिन्दी पखवाड़ा 2024 की कुछ झलकियां

भा.वा.अ.शि.प.–शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प.–शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (आफरी) में दिनांक 14–09–2024 को हिन्दी पखवाड़ा का आरंभ हुआ। आफरी में हिन्दी पखवाड़ा व हिन्दी दिवस आयोजन का समारंभ भारत मंडपम, नई दिल्ली में आयोजित **'हिन्दी दिवस एवं चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन'** के आरंभ के साथ हुआ।

'हिन्दी दिवस' दिनांक 14 सितंबर, 2024 को संस्थान के निदेशक, डॉ. तरुण कान्त ने संस्थान के सभागार में माननीय पर्यावरण,वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री, भारत सरकार के संदेश का पाठ किया। डॉ. तरुण कान्त ने हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाए जाने हेतु सभी से अपील की। पखवाड़े के दौरान हिन्दी प्रश्नोत्तरी, हिन्दी टंकण (सामान्य व यूनिकोड), हिन्दी आशु भाषण, हिन्दी टिप्पण तथा आलेखन, शुद्ध हिन्दी लेखन, हिन्दी निबंध, स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिताएं आयोजित की गई जिनमें संस्थान के कार्मिकों ने बढ़– चढ़ कर भाग लिया। **दिनांक 30–09–2024** को हिन्दी पखवाड़ा का **समापन समारोह** आयोजित किया गया। इस अवसर पर संस्थान के सहायक निदेशक(राजभाषा),श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने संस्थान की राजभाषा हिन्दी की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट **(2023–24)** प्रस्तुत की तथा संस्थान में राजभाषा संबंधी हो रही गतिविधियों से अवगत कराया। पखवाड़ा के दौरान आयोजित हुई विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाण–पत्र प्रदान कर उनका उत्साह वर्धन किया गया।

इसके अतिरिक्त संस्थान में नियमित तौर पर प्रत्येक तिमाही में संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकों का आयोजन किया जाता है तथा समय समय पर हिन्दी कार्यशालाएँ भी आयोजित होती हैं।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की राजभाषा गतिविधियां

संस्थान में राजभाषा हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रगति और प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अनेक गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। संस्थान में समय–समय पर पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय तथा भा.वा.अ.शि.प. मुख्यालय से प्राप्त विभिन्न दिशा–निर्देशों का क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाता है।

संस्थान में दिनांक 5 मार्च, 2024 को **"राजभाषा नियम 1976, मासिक/त्रैमासिक प्रतिवेदन तथा राजभाषा प्रश्नोत्तरी"** विषय पर एक दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में संस्थान के नवनियुक्त तकनीशियनों को राजभाषा हिन्दी के प्रति जागरूक किया गया। इसी क्रम में दिनांक 27 से 29 मई, 2024 को "कंठस्थ अनुवाद टूल" पर तीन दिवसीय हिंदी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में प्रतिभागियों को कंठस्थ टूल के माध्यम से अनुवाद संबंधी दैनिक कार्यालयीन कार्य सरलता एवं सुगमता से करने का अभ्यास कराया गया। इसके अतिरिक्त, संस्थान में दिनांक 22 जुलाई से 2 अगस्त 2024 तक विभिन्न प्रभागों/अनुभागों/कार्यालयों में कंठस्थ अनुवाद टूल एवं मासिक/त्रैमासिक प्रतिवेदन शीर्षक विषय पर हिंदी प्रशिक्षण कार्यशालाओं की श्रृंखला आयोजित की गई। संस्थान के कुल 9 कार्यालयों में व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से प्रतिभागियों को कंठस्थ अनुवाद टूल के संबंध में अवगत कराया गया तथा उनको इस सॉफ्टवेयर पर अभ्यास कराया गया।

संस्थान में दिनांक 14 से 27 सितंबर, 2024 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी निबंध, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिंदी टंकण तथा काव्य पाठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। दिनांक 27 सितंबर, 2024 को आयोजित समापन कार्यक्रम में डॉ. रेनू सिंह, निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान महोदया के कर–कमलों से सभी विजेता प्रतिभागियों को प्रशस्ति पत्र एवं नगद पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2023–24 के दौरान राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रशासनिक कार्यालयों की श्रेणी में वन अनुसंधान संस्थान सम विश्वविद्यालय तथा अनुसंधान कार्यालयों की श्रेणी में वनोपज प्रभाग को शील्ड एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किए गए।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प.–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला भारत सरकार द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुरूप लगभग 100% कार्य हिन्दी में निष्पादित कर रहा है। इस वर्ष दो दिवसीय कार्यशालाएं तथा हिन्दी पखवाड़े का सफल आयोजन किया गया। इसके अतिरिक्त हिन्दी में चल रहे कार्यों को और अधिक बढ़ाने हेतु प्रत्येक तिमाही कार्यान्वयन समिति की बैठक भी की गई। कार्यान्वयन समिति की प्रथम बैठक 26.04.2024, द्वितीय बैठक 10.07.2024 व तृतीय बैठक 25.10.2024 को आयोजित की गई।

प्रथम कार्यशाला का आयोजन दिनांक 15.05.2024 को निदेशक (प्रभारी), डॉ. संदीप शर्मा की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें सभी वैज्ञानिकों, विभागाध्यक्षों, कर्मचारियों एवं शोधार्थिओं ने भाग लिया। कार्यशाला के मुख्य वक्ता श्री सुनील कुमार गुप्ता, प्रबन्धक, भारतीय स्टेट बैंक, शिमला ने "राजभाषा हिन्दी का महत्व एवं इसके संवैधानिक प्रावधान तथा राजभाषा अधिनियम 1963" विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया। दूसरी कार्यशाला का आयोजन दिनांक 13.09.2024 को किया गया जिसमें डॉ बालकृष्ण तिवारी, वैज्ञानिक– सी व श्रीमती पारुल चौधरी, अवर श्रेणी लिपिक द्वारा संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कंठस्थ 2.0 पर प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

संस्थान में 13.09.2024 को हिन्दी दिवस मनाया गया। हिन्दी पखवाड़े का आयोजन बहुत ही उत्साह एवं हर्षोल्लास से किया गया, जिसमें राजभाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए **निबंध लेखन, हिन्दी टंकण, शब्द ज्ञान व हिन्दी व्याकरण, टिप्पण एवं प्रारूपण (नोटिंग–ड्राफ्टिंग) तथा कविता पाठ** जैसी विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया गया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.-वन उत्पादकता संस्थान, रांची की राजभाषा गतिविधियां

भारत सरकार की राजभाषा नीति के संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमुखता देते हुए संस्थान में दिनांक 14 सितम्बर से 30 सितम्बर 2024 तक हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। पखवाड़ा के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं में संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधकर्मियों की सक्रिय सहभागिता रही। हिंदी पखवाड़ा के दौरान शत प्रतिशत हिंदी में कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया एवं राजभाषा के प्रचार प्रसार हेतु कार्यक्रम आयोजित किए गए।

संस्थान निदेशक डॉ. अमित पाण्डेय की अध्यक्षता में एवं समूह समंवयक अनुसंधान के मार्गदर्शन में दिनांक 01 अक्टूबर 2024 को हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के अंत में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र प्रदान कर सम्मानित किया गया एवं उनका उत्साहवर्धन किया गया। साथ ही हिन्दी भाषा में कार्य करने वाले कार्मिकों को प्रोत्साहित करने हेतु उनके द्वारा हिन्दी में किये गए वर्षवार कार्यों के आधार पर प्रशस्ति पत्र के साथ पुरस्कृत किया गया।

हिंदी पखवाड़ा के सफल आयोजन हेतु हिंदी अधिकारी ने उपस्थित सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों और कर्मचारियों का आभार व्यक्त किया। उन्होनें प्रतियोगिताओं की भारी प्रविष्टयों की गुणवत्ता पर खुशी जाहिर करते हुए मूल्यांकन समिति के सदस्यों का आभार व्यक्त किया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की राजभाषा गतिविधियां

संघ की राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ, भा.वा.अ.शि.प.– उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में माह सितंबर 2024 के दौरान हिन्दी पखवाड़ा मानाया गया। हिन्दी पखवाड़े का शुभारंभ दिनांक 14 सितंबर, 2024 को भारत मण्डपम, नई दिल्ली में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में प्रतिभागिता से किया गया। पखवाड़े के दौरान हिन्दी पुस्तक मेला का प्रदर्शन किया गया। पुस्तक मेले में गीता प्रेस व विश्ववाणी संस्थान जबलपुर की उत्कृष्ठ पुस्तक एवं शोध में संलग्न विभिन्न पुस्तकों की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। पखवाड़े के दौरान हिन्दी साहित्य में 'पर्यावरण चेतना' विषय पर विशेष संगोष्ठी का आयोजन किया गया। पखवाड़े के अंतर्गत अन्य 10 प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं तथा जबलपुर इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्रों द्वारा 'वन और हम' विषय पर आधारित नुक्कड़ नाटक का अभिनय भी किया गया।

पखवाड़े का समापन समारोह 30 सितम्बर 2024 को आयोजित किया गया। इस अवसर पर निदेशक डॉ. एच. एस. गिनवाल ने अपने भाषण में सभी विजाताओं को उनकी सफलता पर बधाई देते हुए संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में हो रही उत्तरोत्तर वृद्धि को बनाये रखने का आग्रह किया और राजभाषा की नीति की अपेक्षाओं के अनुरुप संघ सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलतापूर्वक प्रयास करते रहने हेतु आशा व्यक्त की।

भा.वा.अ.शि.प.–उ.व.अ.सं., जबलपुर को वर्ष 2023 के दौरान राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में किये जा रहे उत्कृष्ठ एवं सराहनीय कार्य के लिए जबलपुर नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति कार्यालय क्रमांक 02 द्वारा प्रथम पुरस्कार स्वरूप ट्रॉफी से सम्मानित किया गया। दिनांक 27 दिसंबर, 2024 को रेल सौरभ ऑफिसर्स क्लब जबलपुर में आयोजित 15 वीं नराकास की बैठक में संस्थान को ट्रॉफी प्रदान किया गया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प. –वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प. –वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में निदेशक डॉ. नितिन कुलकर्णी के नेतृत्व एवं मार्गदर्शन में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए दिनांक 14 सितम्बर से 20 सितम्बर, 2024 तक हिन्दी सप्ताह मनाया गया। हिन्दी सप्ताह कार्यक्रम के दौरान आयोजित राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी, कविता पाठ आदि प्रतियोगिताओं में संस्थान के कर्मचारियों और अधिकारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया एवं दैनिक कार्यों में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग करने का संकल्प लिया। कार्यक्रम के दौरान अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन स्वरूप "स्वतंत्र भारत की राजभाषा–हिन्दी" विषयक लघु वृत्तचित्र दिखाया गया। माननीय निदेशक महोदय ने अपने संबोधन में सभी प्रभागाध्यक्षों, वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा राजभाषा हिन्दी में किए जा रहे कार्यों व प्रयासों की सराहना की।

संस्थान द्वारा प्राप्त प्रमुख उपलब्धियों में भा.वा.अ.शि.प., मुख्यालय द्वारा संस्थान को 'ग' क्षेत्र स्थित संस्थानों की श्रेणी में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन में उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु वर्ष **2023–24 का राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार** प्रदान किया गया। संस्थान की हिन्दी–असमिया द्विभाषी वार्षिक ई–पत्रिका वर्षारण्यम–2023, संस्करण–6 का विमोचन दिनांक 07.03.2024 को श्रीमती कंचन देवी, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के कर–कमलों द्वारा किया गया, तथा संस्थान में 7–8 मार्च, 2024 के दौरान आयोजित वृक्ष उत्पादक मेला में त्रैभाषिक (असमिया, हिन्दी एवं अंग्रेजी) स्मारिका का विमोचन भी महानिदेशक महोदया के कर–कमलों द्वारा हुआ। संस्थान में त्रैमासिक हिन्दी संवाद–पत्रिका (अक्टूबर–दिसम्बर, 2023) के उद्घाटन अंक का विमोचन दिनांक 21 मार्च, 2024 को किया गया और हिन्दी संवाद–पत्रिका (जनवरी–मार्च, 2024 तथा अप्रैल–जून, 2024) का भी प्रकाशन किया गया।

इसके अतिरिक्त संस्थान में स्मृति आधारित अनुवाद सॉफ्टवेयर/टूल पर कुल चार (29.12.2023 से 04.01.2024, 18.03.2024, 06–11.06.2024, 18.06.2024) हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित की गई, जिसमें सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उक्त सॉफ्टवेयर में मशीनी अनुवाद करना, अनुवाद स्मृति की विशेषाएं, मोबाइल ऐप तथा पंजीकरण आदि से जुड़े विविध विषयों पर जानकारी प्रदान की गई। संस्थान में नियमित रूप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक भी आयोजित की जाती है।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु की राजभाषा गतिविधियां

भा.वा.अ.शि.प.–काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरु राजभाषा की नीतियों के कार्यान्वयन के प्रति समर्पित एवं प्रतिबद्ध है। राजभाषा नीतियों के कार्यान्वयन के लिए समय–समय पर केन्द्र सरकार द्वारा दिशानिर्देश जारी किए जाते हैं। हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए हमारे संस्थान में समय–समय पर विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं। संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें दिनांक 26 मार्च 2024, 06 जून 2024, 27 सितंबर 2024 तथा 20 दिसंबर 2024 को आयोजित की गईं जिनमें राजभाषा की नीतियों के कार्यान्वयन तथा हिन्दी के उपयोग पर विस्तृत चर्चा कर नीतियों को कार्यरूप दिया गया।

संस्थान में समय–समय पर हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन भी किया गया। दिनांक 28 मार्च 2024 को तकनीकी एवं अनुसंधान कर्मचारियों के लिए तथा दिनांक 11 जून 2024 को अधिकारियों के लिए राजभाषा अभिमुखीकरण कार्यक्रम आयोजन किया गया। इसी क्रम में दिनांक 30 अगस्त को अनुवाद टूल कंठस्थ पर विशेष कार्यशाला का आयोजन किया गया। दिनांक 26 सितंबर 2024 को अनुसचिवीय कर्मचारियों के लिए तथा 27 दिसंबर 2024 को तकनीकी एवं अनुसंधान कर्मचारियों के लिए एक–एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु हिन्दी पखवाड़ा समारोह 2024 का आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन दिनांक 13 सितंबर 2024 को किया गया। पखवाड़े के दौरान अधिकारियों और कर्मचारियों के बीच राजभाषा हिन्दी के प्रति रुचि वर्धन हेतु विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिनमें संस्थान के अधिकारियों और कर्मचारियों ने बड़ी तन्मयता से भाग लिया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.वा.अ.शि.प. – वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर की राजभाषा गतिविधियां

भा.आ.अ.शि.प. – वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबत्तूर राजभाषा के प्रचार–प्रसार में निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में नियमित रुप से राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष 09.04.2024, 19.07.2024 और 25.10.2024 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का आयोजन किया गया। दिनांक 22 जनवरी 2024 को "राजभाषा के प्रयोग में व्यावहारिक समस्याएं एवं समाधान" विषय पर हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के विभिन्न विभागों से 20 अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। कार्यशाला के विषय पर विस्तार से चर्चा करने के लिए डॉ. रमेश बाबु दर्शि, वरिष्ठ प्रबन्धक (राजभाषा), बैंक ऑफ बड़ौदा, कोयम्बत्तूर को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया था।

हिंदी के प्रति कर्मचारियों की रुचि वर्धन हेतु दिनांक 07 जून 2024 को हिंदी फिल्म "दंगल" का प्रदर्शन किया गया जिसमें संस्थान निदेशक सहित सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों ने भाग लिया। हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु दिनांक 14–28 सितंबर तक हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया, जिसका समापन दिनांक 30 सितंबर 2024 को किया गया। पखवाड़े का शुभारम्भ 14–15 सितंबर को राजभाषा विभाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में भाग लेकर किया गया। पखवाड़े के दौरान संस्थान में विभिन्न प्रतियोगिताओं जैसे हिन्दी प्रश्नोत्तरी, हिन्दी अनुवाद, हिन्दी शब्दों का व्यवस्थीकरण आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इस समारोह में सभी कर्मचारियों ने हर्षोल्लास से भाग लिया।

संस्थान के निदेशक ने प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार देकर उन्हें प्रोत्साहित किया। हिन्दी पखवाड़े के दौरान हिन्दी टेलेंट शो भी आयोजित किया गया, जिसमें अनेक कर्मचारियों ने हिन्दी में अपनी प्रतिभा व्यक्त की। पुरस्कार वितरण के बाद निदेशक ने अपने भाषण में संस्थान के द्वारा राजभाषा कार्यान्वयन में की गई प्रगति के लिए राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों को बधाई दी और अपने अनुभव द्वारा जीवन में भाषा के महत्व को विस्तार से बताया। कार्यक्रम का समापन राष्ट्र गीत के साथ किया गया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित कुछ झलकियाँ

भा.व.अ.शि.प.-वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद की राजभाषा गतिविधियाँ

भा.वा.अ.शि.प.–वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा हिंदी के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति में चर्चा की गई एवं उसमें सुधार करने हेतु सभी बिन्दुओं पर विचार विमर्श किया गया। दिनांक 25.11.2024 से 29.11.2024 तक ब्यूरो मुख्यमंत्री नई दिल्ली द्वारा आयोजित उच्च स्तरीय अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम में संस्थान के तीन वैज्ञानिक डॉ. शिवप्रसाद के.एम., वैज्ञानिक–बी, डॉ. पी.एस. श्रीकांत, वैज्ञानिक–बी एवं डॉ. सूरज, वैज्ञानिक–बी ने भाग लिया।

संस्थान में माह सितंबर के दौरान हिंदी सप्ताह का अयोजन दिनांक 09 से 13 सितंबर, 2024 तक किया गया। इस दौरान दो प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। श्रीमती भारती पटेल, वैज्ञानिक–'सी' एवं प्रभारी हिंदी अधिकारी ने हिंदी सप्ताह का संचालन किया। श्री ई. वेंकट रेड्डी, निदेशक महोदय ने संस्थान में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए नियमित रूप से दिशा निर्देश दिए। सप्ताह के दौरान आयोजित हिन्दी व्याकरण ज्ञान प्रतियोगिता में श्रीमती शुभी कुलश्रेष्ठ, वरिष्ठ तकनीशियन एवं अंसारुल हक, कनिष्ठ परियोजना अध्येता ने प्रथम स्थान प्राप्त किया, आर.एन. निकित कुमार ने द्वितीया एवं के. चंद्र प्रकाश, वरिष्ठ परियोजना अध्येता ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। दूसरी प्रतियोगिता "रिक्त स्थान की पूर्ति" में अंसारुल हक, कनिष्ठ परियोजना अध्येता ने प्रथम स्थान प्राप्त किया, छोटू कुमार यादव, कार्यालय परिचालक ने द्वितीय स्थान एवं श्री राजेश्वर के., कनिष्ठ परियोजना अध्येता ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

राजभाषा गतिविधियों से संबंधित झलकी

वानिकी

3. बेडू – हिमालयी क्षेत्र का एक बहुमूल्य वृक्ष

डॉ. माला राठौर
भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

फाइकस पालमाटा मोरेसी कुल का एक मध्यम आकार का फलदार वृक्ष है। जिसे उत्तराखंड के गढ़वाल क्षेत्र में बेडू, जौनसार में फेडू तथा पंजाब में फकूडी तथा उत्तरप्रदेश में इसे दुधला व पहाडी अंजीर कहा जाता हैं। सामान्यतः भारत में बेडू के पेड़ मैदानी क्षेत्रों से लेकर हिमालयी क्षेत्र में 1500–1600 मीटर की ऊंचाई तक पाए जाते है। भारत के अलावा, यह नेपाल, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ हिस्सों में भी पाया जाता है।

बेडू के लिए गर्म एवं शुष्क जलवायु तथा अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी उपयुक्त है। इसके पत्ते चौडें और हल्के हरे रंग के होते हैं। इसके फल हरे छोटे और गोल होते है तथा पकने पर गहरे बैगनी या काले रंग के हो जाते है। फलों का स्वाद पकने पर मीठा और स्वादिष्ट होता है। वैसे तो इसके फल साल भर कहीं ना कहीं पकते रहते है, लेकिन अधिकांश क्षेत्रों में जहां गर्मी अधिक होती है वहां अप्रैल–मई एवं ठंडे क्षेत्रों में जुलाई–अगस्त के महीने तक पकते रहते हैं।

बेडू को विभिन्न प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है–

खाद्य उपयोगः

- **ताजे फलः** बेडू के ताजे फल सीधे पेड़ से तोड़कर खाए जा सकते है। ये पके फल मीठे और स्वदिष्ट होते है और ताजगी प्रदान करते हैं। ताजे फलों का सेवन विटामिन–सी, विटामिन–ए, कैल्सियम और आयरन की पूर्ति करता है, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने और हडियों को स्वस्थ रखने में मदद करता है।
- **सुखाए हुए फलः** बेडू के फलों को सुखाकर भी खाया जा सकता है। सुखाए हुए फल लंबे समय तक सुरक्षित रहते हैं, और ऊर्जा का अच्छा स्रोत होते है। सुखाए हुए फलों का सेवन स्नैक्स के रूप में किया जा सकता है जो शरीर को तत्काल ऊर्जा प्रदान करता है।
- **जैम और मुरब्बाः** बेडू के फलों से जैम और मुरब्बा भी बनाया जाता है, इसके लिए फलों को शक्कर और मसालों के साथ पकाया जाता है। जैम और मुरब्बा को ब्रेड, रोटी या पराठें के साथ नाशते में खाया जा सकता है।
- **सलाद और चटनी :** बेडू के ताजे फलों को सलाद में मिलाकर खाया जा सकता है। यह सलाद में एक मीठा और खट्टा स्वाद जोड़ता है। बेडू की चटनी भी बनायी जाती है, जो खाने के स्वाद को बढ़ाती है।
- **शेक और स्मूदी :** बेडू के फलों को दही या दूध के साथ मिलाकर स्मूदी बनाई जा सकती है, जो गर्मियों के मौसम में एक ठंडा और पौष्टिक पेय होता है।
- **पकवानों में उपयोग :** बेडू के फलों को विभिन्न मिठाईयों, केक और बिस्कुट में मिलाकर भी उपयोग किया जा सकता है। यह पकवानों में मिठास और विशेष स्वाद देता है।
- **पोषणीय मूल्य :** बेडू के फलों में पोषक तत्व भरपूर मात्रा में होते है। ये खनिज, फाईबर, कार्बोहाईड्रेट, के अच्छे स्रोत है। फाईबर की उच्च मात्रा के कारण यह पाचन तंत्र को मजबूत बनाते है और कब्ज की समस्या को दूर करते है।

औषधीय गुणः

- बेडू के फल से निकलने वाला सफेद दूध चोट लगने के उपचार में मददगार होता है। उत्तराखंड में इसके दूध को 'चोप' कहते है। चोट की जगह पर यह लगाया जाए तो चोट ठीक हो जाती है, इसके अलावा शरीर में कई कांटा चुभ जाए तो चोप लगाने से कांटा खुद ही निकल जाता है।

- बेडू के चोप को बतासे में रख कर कुमांऊ के कई क्षेत्रों में पहले लोग दांत दर्द के इलाज में उपयोग किया करते थे।
- यह फल एन्टीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होता है, जो शरीर को फ्री रेडिकल्स से होने वाले नुकसान से बचाता है। पहाडी बेडू का सेवन दिल के लिए फायदेमंद होता है और यह ब्लड में शुगर की मात्रा को कम करता है। इसके सेवन से कोलेस्ट्रॉल की समस्या से निजात मिलती है।
- बेडू का फल खाने से फेफडों एवं श्वास की बीमारी ठीक हो जाती है।
- बेडू के फलों में प्राकृतिक शर्करा होती है जो मधुमेह रोगियों के लिए सुरक्षित होती है और रक्त शर्करा स्तर को नियंत्रित करने में मदद करती है।
- बेडू की छाल का उपयोग त्वचा रोगों के उपचार में किया जाता है, इसमें एंटीसेप्टिक का गुण पाया जाता है।
- बेडू का फल ट्यूमर, अल्सर, मधुमेह से संबंधी रोगों के लिए लाभदायक है। यह एस्पिरियन और डिक्लोफेनाक जैसे सिंथेटिक दर्द निवारक दवा का विकल्प भी हो सकता है।
- बेडू के पके फलों को खाने से पीलिया रोग नहीं होता है इसे उत्तराखंड के पौडी गढवाल एवं अन्य जगहों में भी पहले लोग पीलिया के उपचार में उपयोग करते थे।

अन्य उपयोग

- इसकी लकडी का उपयोग ईंधन के रूप में और इसके पत्तों का उपयोग पशु चारे के रूप में किया जाता है। यह पशुओं के लिए पौष्टिक आहार होता है, जिससे पशुओं में दूध की मात्रा बढ़ जाती है। बेडू के पेड की जडें मिट्टी को मजबूती प्रदान करती हैं और मृदा अपरदन को रोकने में मदद करती हैं।

आर्थिकी

- बेडू के फलों से उत्तराखंड में पिथौरागढ़ एवं उत्तरकाशी जनपदों के कई स्थानों पर अचार बनाया जाता है। जिसका बाजार मूल्य 100रू प्रति 500 ग्राम है। इसे अंजीर की तरह सुखा कर लम्बे समय तक रखा जाता है। जो शुगर के रोगियों के लिए उपयोगी है। बेडू के कच्चे फलों से उत्तराखंड एवं हिमाचल के कुछ स्थानों में सब्जी भी बनाई जाती है। इसके अलावा बेडू से चटनी, जूस, कैंडी, मुरब्बा, स्क्वैश आदि बना कर आर्थिकी को सुधारा जा सकता है।

नर्सरी तकनीक

बेडू के बीजों का प्रकीर्णन मुख्यतः पक्षियों के द्वारा होता है। पौधों को उगाने के लिए कटिंग, बीज और वायु परतन तकनीक का इस्तेमाल किया जा सकता है।

कटिंग से उगाना– कटिंग से पौधों को तैयार करने के लिए मार्च –अप्रैल का समय सबसे उपयुक्त है। कटिंग को स्वस्थ्य पेड़ से काट कर इसकी कलमों की लम्बाई 12–15 सेमी तथा मोटाई 3–4 सेमी होनी चाहिए। कटिंग को मिट्टी, रेत एवं खाद के 1:1:1 के मिश्रण में लगाया जाना चाहिए, तथा 5 से 8 सेमी तक मिट्टी के अन्दर डालना चाहिए जिससे 2–3 नोड मिट्टी के अंदर चले जाए एवं कटिंग के ऊपरी भाग को मोम से कवर कर देना चाहिए ताकि वह हवा एवं नमी न ले सके। रूटिंग बढ़ानें के लिए आईबीए 1000 पीपीएम का उपयोग किया जा सकता है। अगर कटिंग हार्ड है तो आईबीए के पीपीएम को बढ़ाया जा सकता है। कटिंग से 15 से 20 प्रतिशत तक पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

बीज से– बीजों को बोने का सही समय मार्च या अगस्त का महीना उपयुक्त है, जब वातावरण 20–25 डिग्री तापमान के आसपास हो। बीजों को सीधे जमीन में बोने के बजाय रूट ट्रेनर या ट्रे में बोना चाहिए तथा बोने के बाद एक –एक दिन छोड़कर पानी डालना चाहिए। बीज 10 से 15 दिन में निकलने शुरू हो जाते है। तथा 4 से 6 माह में पौधों की लम्बाई 25 से 30 सेमी तक हो जाती है और पौधे रोपण के लिए तैयार हो जाते है।

इसके अलावा वायु परतन से भी पौधों को तैयार किया जा सकता है। वायु परतन के लिए सही समय ग्रीष्म काल के शुरू होने का समय है, जब तापमान लगभग 25 डिग्री हो। वायु परतन में मॉसघास और रूटिंग हॉर्मोन का उपयोग किया जाता है। मॉसघास को गिलाकर उपयोग किया जाता है। इसमें 3 से 4 महीने में रूटिंग हो जाती है, और

पौधों से कटिंग कर पौली बैग या सीधें जमीन में लगाने के लिए तैयार हो जाते है।

निष्कर्ष

फाइकस पालमाटा (बेडू) एक बहुमूल्य वृक्ष है जो न केवल औषधीय गुणों से भरपूर है बल्कि पोषण और पर्यावरणीय लाभ भी प्रदान करता है। इसके फल न केवल स्वादिष्ट होते है बल्कि पोषण से भी भरपूर होते हैं। इसके फलों को सही ढंग से उपयोग करके हम न केवल अपने आहार को स्वादिष्ट बना सकते हैं बल्कि अपनी सेहत को भी बेहतर बना सकते हैं। इसके फलों के विविध उपयोग इसें एक बहुमूल्य खाद्य स्रोत बनाते हैं, जिसे हमारे दैनिक आहार में शामिल किया जाना चाहिए। बेडू के पेड को संरक्षण की आवश्यकता है, क्योंकि अतिक्रमण और जंगलों की कटाई के कारण इसके प्राकृतिक आवास कम होते जा रहे हैं। इसके पौधों को नर्सरी में उगाकर और पुनः वनीकरण कार्यक्रमों के माध्यम से इसे संरक्षित किया जा सकता है।

बेडू के फल

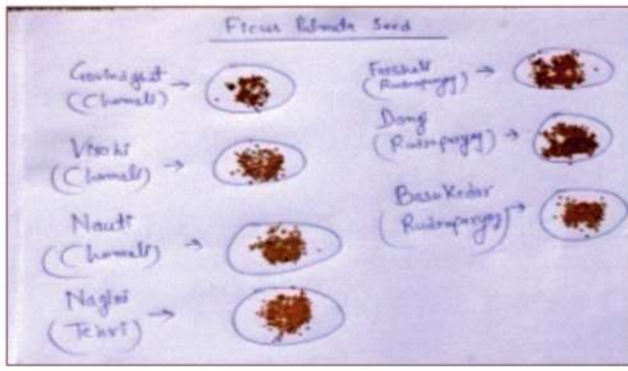

बेडू के बीज

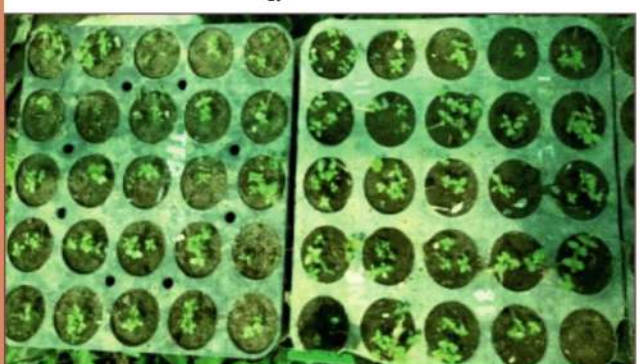

बीज से तैयार पौधे

वायु परतन द्वारा तैयार कंटिग

बेडू का पेड़

बेडू के पके फल

बेटुला यूटिलिस: उच्च ऊंचाई वाले संक्रमण क्षेत्र का महत्वपूर्ण वृक्ष

डॉ. वनीत जिश्तु, सुश्री. मोनिका चौहान, श्री ब्रिजभुषण
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

टिम्बर लाइन हिमालय में एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक सीमा बनाता है जो वनस्पति की सीमा को चिह्नित करता है और बंद कैनोपी वन और अल्पाइन क्षेत्र के बीच अंतर स्थापित करता है। पश्चिमी हिमालय के ऊचे क्षेत्र में अधिकांश हिमालयी बर्च (*बेटुला यूटिलिस* डी–डॉन) द्वारा शासित होते हैं और शंकुधारी वन क्षेत्र और सब अल्पाइन और अल्पाइन क्षेत्रों के बीच बफर क्षेत्र के रूप में कार्य करते हैं। यह एक कीस्टोन प्रजाति मानी जाती है जो टिम्बर लाइन जैव मंडल की संरचना और कार्य क्षमता को बनाए रखने और माइक्रो–पर्यावरण की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जानकारी	विवरण
वैज्ञानिक नाम	*बेटुला यूटिलिस*
सामान्य नाम	हिमालयन बर्ज, भोजपत्र
कुल	बेटुलेसी
मूल क्षेत्र	पश्चिमी हिमालय, अफगानिस्तान, भूटान, चीन, भारत, नेपाल, पाकिस्तान
आवास	सबअल्पाइन और अल्पाइन वन, 2800.4500मी
वृक्ष का आकार	20 मीटर तक ऊंचा
पत्ते	अंडाकार, 5–10 सेंटी मीटर लंबे, दंतदार किनारे
छाल	पतली, पेपरी, बहुत चमकदार, लालिमा–भूरी से सफेद
पुष्प	नर और मादा कैटकिन, मई– जुलाई

हिमालयी बर्च, जिसे संस्कृत में भोजपत्र कहा जाता है, भारतीय संस्कृति और पौराणिक कथाओं में कई शताब्दियों से पूजनीय रहा है। प्राचीन भारत में भोजपत्र के पत्ते को पवित्र ग्रंथों, धार्मिक पाठों और हस्तलिखित पुस्तकों को लिखने के लिए व्यापक रूप से उपयोग किया जाता था। ऋग्वेद, सबसे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में से एक, भोजपत्र के पत्तों पर लिखा गया माना जाता है। हिंदू पौराणिक कथाओं में, भोजपत्र का पेड़ ज्ञान, बुद्धि और दिव्य संचार से जुड़ा माना जाता है। प्राचीन भारत में, भोजपत्र के पत्तों का उपयोग शुभ कार्यों और महत्वपूर्ण दस्तावेजों को लिखने के लिए किया जाता था।

बेटुला यूटिलिस डी. डॉन (कुल–बेटुलेसी) का वर्णन और नामकरण वनस्पति–वैज्ञानिक डेविड डॉन ने "Prodromus Florae Nepalensis" में Nathaniel Wallich द्वारा 1820 में नेपाल से एकत्र किए गए नमूनों से किया था। *बी. यूटिलिस*, जिसे आमतौर पर हिमालयी बर्च (हिंदी: भोजपत्र) के नाम से जाना जाता है, उत्तर–पश्चिम हिमालय में पाया जाने वाली एक मात्र बर्च प्रजाति है। यह एक पतझड़ी वृक्ष है जो अफगानिस्तान, चीन उत्तर–मध्य, चीन दक्षिण–मध्य, चीन दक्षिण–पूर्व, पूर्वी हिमालय, मंगोलिया, कजाकिस्तान, किर्गिजस्तान,

नेपाल, पाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तिब्बत, उज्बेकिस्तान, पश्चिमी हिमालय का देशज है।

और इसका विस्तार समुद्र तल से 4,500 मीटर (14,800 फीट) की ऊंचाई तक है। यह एक मध्यम आकार का, बहु–शाखाओं वाला वृक्ष है और इसकी ऊंचाई 20 मीटर तक की हो सकती है। आमतौर पर, यह प्रजाति खुले उजागर इलाकों में उगती है जो शीतकाल के दौरान 5–6 महीनों तक बर्फ से ढके रहते हैं। यह मध्य और पश्चिमी हिमालय में प्रमुख चौड़ी पत्ती वाला वृक्ष रेखा प्रजाति है। यह प्रजाति अधिकतर उत्तर की ओर ढलान वाले छायादार–नम वातावरण में पाई जाती है। इसमें उच्च ठंड सहन करने की क्षमता है, जिससे यह हिमालयी क्षेत्र में वृक्ष रेखा बना सकती है। परिणामस्वरूप, यह प्रजाति निम्न तापमान के वातावरण के प्रति प्रतिरोधक बन जाती है और ठंडी हवाओं को सहन कर सकती हैं। यह एक दीर्घायु वाली प्रजाति है जो 400 साल तक जीवित रह सकती है और हिमालय में एक मात्र पुष्पीय पौधा है जो उप–अल्पाइन क्षेत्र में व्यापक प्रभुत्व रखता है। इसका लैटिन विशिष्ट उपनाम "*यूटिलिस*" का अर्थ "उपयोगी" है, जो इसके अनेक उपयोगों की ओर संकेत करता है। यह हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में योगदान देता है, मिट्टी के कटाव को कम करता है और वृक्ष रेखा के नीचे के जंगलों और उप–अल्पाइन घास के मैदानों के लिए एक जैव–ढाल बनाता है। कई पारिस्थितिकीय लाभों के अलावा, इसे हिमालय में रहने वाले विभिन्न जातीय और गैर–जातीय समुदायों द्वारा प्रदर्शित विभिन्न पारंपरिक औषधीय उपयोगों के लिए पहचाना गया है। हिमालय में प्राकृतिक आपदाएं और बड़े पैमाने पर वनों की कटाई और *बी.यूटिलिस* वृक्षों के कई उपयोगों के लिए अत्यधिक शोषण जैसी विभिन्न मानव जनित गतिविधियों ने इसके वनों में आवास हानि / कमी का कारण बना है। हिमालयी बर्च को इनविस सेंटर ऑन कंजर्वेशन ऑफ मेडिसिनल प्लांट्स, FRLHT, बेंगलुरु द्वारा अत्यंत संकटस्थ में वर्गीकृत किया गया है। इसके विपरीत, IUCN/SSC वैश्विक वृक्ष विशेषज्ञ समूह ने इस प्रजाति को घटती जनसंख्या प्रवृत्ति के साथ न्यूनतम संरक्षित सूचीबद्ध किया है।

यह उत्तर–पश्चिमी हिमालय में 3100–3800 मीटर की ऊंचाई सीमा में वितरित है, जबकि पूर्वी हिमालय में इसकी ऊंचाई सीमा बढ़कर 3800 से 4300 मीटर तक हो जाती है। *बी. यूटिलिस* शुद्ध वन और मिश्रित वन क्षेत्रों में उगता है। इसके नीचे यह शंकुधारी पेड़ों यानी एबिस प्रजाति के जंगल के साथ एक संकीर्ण वन बेल्ट बनाता है। शुद्ध बर्च वन उप–अल्पाइन वनों की सबसे ऊपरी सीमा पर *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* और *सोरबस माइक्रोफाइला* के साथ एक अंडर स्टोरी एसोसिएशन बनाता है।

प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार, *बी. यूटिलिस* का सबसे कम घनत्व (8.31 Ind ha^{-1}) 3000 मीटर से नीचे धौलाधार पर्वत श्रृंखला, उत्तर–पश्चिमी हिमालय के सम शीतोष्ण वनों में पाया गया है, जबकि सबसे अधिक घनत्व (1654 Ind m^{-1}) 3800–4000 मीटर के बीच समागाउँ घाटी, गोरखा जिला, मध्य हिमालय, नेपाल में पाया गया है। यह कई जैव रासायनिक यौगिकों का स्रोत है जिसमें कैंसर रोधी, एंटी–एचआईवी, एंटी–ऑक्सीडेंट, एंटी–माइक्रोबियल, और एंटी–फर्टिलिटी गुण होते हैं। ऊर्ध्वाधरण, वनों का कटाई, अत्यधिक दोहन, चराई, ग्लोबल वार्मिंग, और रोगाणु हमला *बी. यूटिलिस* के लिए सभी प्रमुख खतरे हैं। इन खतरों को सतत उपयोग, सूक्ष्म संवर्धन, स्थानीय और बहिर्मुख संरक्षण के माध्यम से कम किया जा सकता है। *बी. यूटिलिस* में कम पुनर्जनन एक प्रमुख समस्या है और इसे उनकी आबादी संरचना द्वारा चित्रित किया जाता है, सफल पुनर्जनन के लिए, कैनोपी गैप का निर्माण, लोपिंग और चराई का नियंत्रण और जड़ी बूटी परत प्रजातियों की अनुकूल संरचना अत्यधिक जिम्मेदार है।

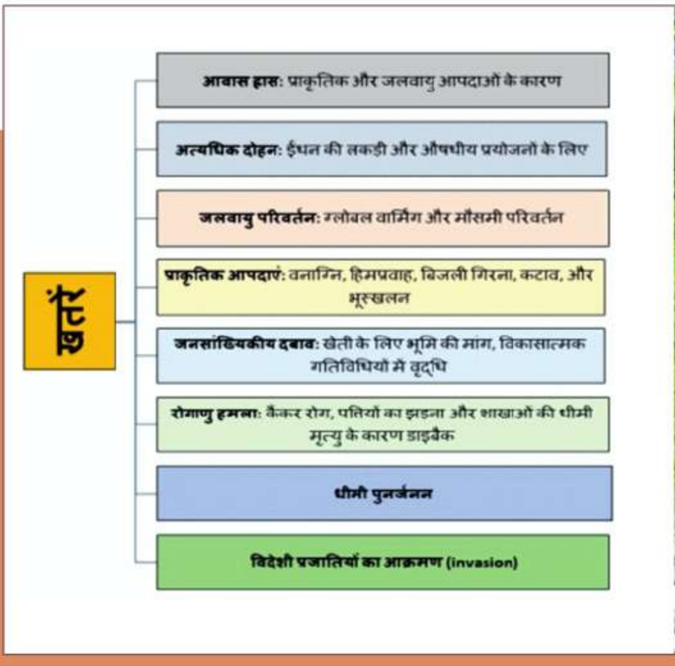

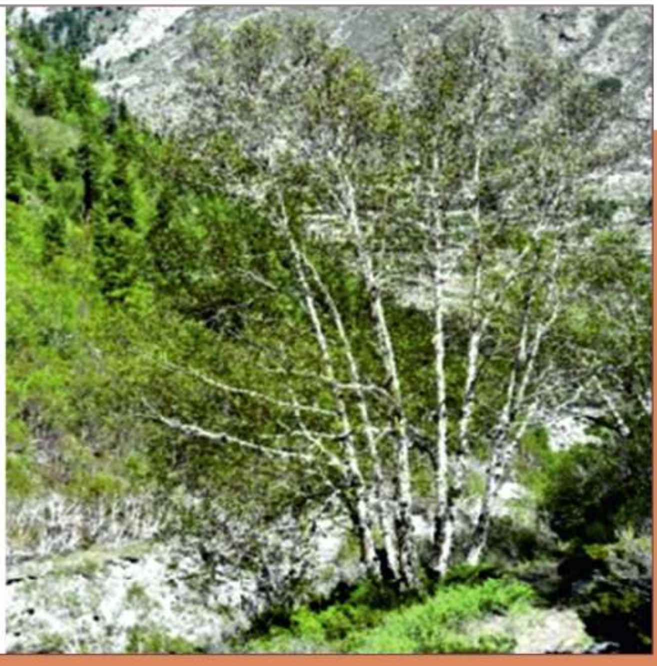

करमल (*डिलेनिया पेंटाग्यना रॉक्सब.*): मध्य भारत की विशाल औषधीय क्षमता वाली लुप्तप्राय वनप्रजाति

श्री मनीष कुमार विजय
भा.वा.अ.शि.प.–उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

डिलेनिया डिलेनियासी कुल से संबंधित एक प्रजाति है, जिसमें दक्षिणी एशिया, आस्ट्रेलिया और हिंद महासागर द्वीप समूह के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की लगभग 100 प्रजातियां शामिल हैं। ऐतिहासिक रूप से, *डिलेनिया* की केवल आठ प्रजातियो को विभिन्न औषधीय प्रथाओं में उनके पारंपरिक उपयोग के लिए प्रलेखित किया गया है। इन प्रजातियों में से केवल दो, *डिलेनिया इंडिका* लिनन और *डिलेनिया पेंटाग्यना* रॉक्सबी, भारत मे पाए जाते हैं।

करमल (*डिलेनिया पेंटाग्यना रॉक्सब.*)

इसे आमतौर पर डॉगटीक, कल्लाई, कर्कोटा और करमल के नाम से जाना जाता है। जीनस का नाम प्रसिद्ध वनस्पतिशास्त्री जे. जे. डिलेनियस के सम्मान में रखा गया हैं। *पेंटाग्यना* फूल की पांच शैलियों की विशेषता को संदर्भित करता है। इन पौधों की पत्ती, छाल और फल का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा में अच्छे चिकित्सीय मूल्यों के रूप में विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासी और लोक समुदायों द्वारा किया जाता रहा है, साथ ही इसके फल कच्चे खाए जाते हैं।

पौधे का आकृतिविज्ञान

करमल एक मध्यम पर्णपाती पेड़ है, जिसकी ऊंचाई आमतौर पर 15–18 मीटर और परिधि 80–90 सेंटीमीटर पाई जाती है। इसकी छाल चिकनी, परत निकलने वाली और भूरे रंग की होती है। पत्तियाँ, वैकल्पिक और डंठल युक्त, गोलाकार से आयताकार या मोटी होती हैं, जिनका आकार लगभग 20–60 सेमी 10–25 सेमी होता है। जालीदार शिराओं को प्रदर्शित करते हुए, पत्तियों में प्रत्येक तरफ लगभग 20–50 माध्यमिक शिराएँ होती हैं, जो एक दूसरे के समानांतर होती हैं। चमकीले पीले रंग वाला फूल, व्यास में 2–3 सेमी, पर्णपाती *पेडीकल्स* (2–4 सेमी) और *ब्रैक्ट्स* के साथ होता है। मांसल बाह्य दलों से घिरा फल, उप–गोलाकार, लगभग 2.5 सेमी व्यास का और आमतौर पर 1–2 बीज वाला होता है। हालांकी हमारे अध्ययन में पके फलों में बीजों की संख्या 0 से 9 तक देखी गई है। बीज, काले, अंडाकार और चमकदार, प्रजातियों को और अधिक विशिष्टता प्रदान करते हैं।

आवास एवं वितरण

करमल हैनान और युन्नान से लेकर भूटान, भारत, इंडोनेशिया, मलेशिया, म्यांमार, नेपाल, थाईलैंड और वियतनाम तक फैले वर्षा वनों, झाड़ियों और पहाड़ियों में पाया जाता है, जो ज्यादातर 400 मीटर से नीचे हैं। भारत

के भीतर, यह पंजाब से असम तक हिमालय तराई में वितरित किया जाता है, जिसमें दक्षिण भारत, अंडमान, गुजरात, मिजोरम और पश्चिम बंगाल शामिल हैं। मध्य प्रदेश में इसे रीवा, सतना, सीधी, शहडोल, उमरिया और अनूपपुर जैसे जिलों में बहुत ही दुर्लभ रूप से देखा गया हैं।

पौधे की उपयोगिता

करमल के महत्वपूर्ण चिकित्सीय और गैर–औषधीय उपयोग हैं, जिन्हें पारंपरिक रूप से विभिन्न औषधीय और दैनिक जीवन अनुप्रयोगों में नियोजित किया जाता है। चिकित्सीय रूप से, करमल जड़ों का उपयोग हैजा के दौरान और सीने की जलन से राहत के लिए रोग निरोधी रूप से किया जाता है। *डिलेनिया पेंटाग्यना* में विभिन्न बायोएक्टिव यौगिक जैसे टैनिन, *फ्लेवोनोइड्स, नैरिंगेनिन डेरिवेटिव*, डायहाइड्रोक्वेरसेटिन, सैपोनिन और टेरपेनोइड्स होते हैं। ये घटक इसके औषधीय गुणों में योगदान करते हैं, जिनमें एंटीऑक्सिडेंट, एंटी–इंफ्लेमेटरी, रोगाणुरोधी और एंटी ट्यूमर गतिविधियां शामिल हैं। इसकी जड़ की छाल भोजन विषाक्तता का इलाज करती है, और जड़ की छाल और पत्तियों का लेप मोच के लिए लगाया जाता है। नई छाल और पत्तियां कसैले के रूप में कार्य करती हैं, और शरीर के दर्द निवारण के लिए इसका काढ़ा उपयोग किया जाता है। छाल का पाउडर मधुमेह, दस्त और पेचिश में मदद करता है, जबकि चीनी और छाल पाउडर का मिश्रण प्रसव में सहायता करता है और संक्रमण को रोकता है। सिर पर लगाने पर छाल का पेस्ट बालों के विकास को बढ़ावा देता है। नमक के साथ कुचले हुए तने की छाल का उपयोग कटने और जलने के लिए किया जाता है, और पत्ती की तैयारी से हड्डी के फ्रैक्चर, रक्तस्राव, बवासीर, त्वचारोग, शरीर में दर्द और स्तन कैंसर का इलाज किया जाता है। रोसांगकिमा और प्रसाद का शोध डाल्टन के लिंफोमा के खिलाफ करमल के मेथनॉलिक अर्क में महत्वपूर्ण एंटीट्यूमर गतिविधि का संकेत देता है, जबकि एथिल एसीटेट अर्क और ग्रिसोफुलविन आशा जनक एंटीफंगल गतिविधि दिखाते हैं। गैर–औषधीय उपयोगों में टसर रेशम के कीड़ों को हरी पत्तियां खिलाना, सूखे पत्तों को सैंड पेपर के रूप में उपयोग करना, और घर–पोस्ट, उपकरण हैंडल आदि के लिए लकड़ी का उपयोग करना शामिल है। औषधीय उपयोगों के अलावा, फल और फूलों की कलियाँ खाने योग्य होती हैं, इन्हें कच्चा, पका कर या अचार बनाकर खाया जाता है, और अपरिपक्व फलों का उपयोग सब्जियों के रूप में किया जाता है। लकड़ी नमी के प्रतिरोधी होने के कारण निर्माण के लिए मूल्यवान है, जबकि लकड़ी का उपयोग उच्च गुणवत्ता वाले लकड़ी का कोयला और छोटी हस्त निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा, पेड़ ग्रामीण समुदायों में ईंधन के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में कार्य करता है। सांस्कृतिक प्रथाओं में, मध्य प्रदेश के विंध्य क्षेत्र में आदिवासी समुदाय दीपावली उत्सव के दौरान देवी लक्ष्मी के रूप में *डी. पेंटाग्यना* की पूजा करते हैं, इसकी लकड़ी से बने स्टैंडों पर देवता की मूर्तियाँ रखते हैं।

करमल की बढ़ती मांग और स्थिरता

करमल अपने बायोएक्टिव यौगिकों के लिए जाना जाता है, जिनमें टैनिन, फ्लेवोनोइड्स, नैरिंगेनिन, डायहाइड्रोक्वेरसेटिन और सैपोनिन शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक अद्वितीय औषधीय प्रभाव प्रदान करता है। यह प्रजाति मध्य भारतीय राज्यों में लुप्तप्राय हो गई और इसके कम बीज अंकुरण दर के कारण जंगली जर्मप्लाज्म के नुकसान को लेकर गंभीर चिंता है। मध्य प्रदेश वनविभाग अपने पत्र क्र. अनुसंधान विस्तार/नर्सरी/2019/708 दिनांक 22/03/2019, द्वारा करमल को गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजाति घोषित किया है क्योंकि इसके जंगली जर्मप्लाज्म के खत्म होने का खतरा मंडरा रहा है। इसलिए, इस प्रजाति के जंगली जर्मप्लाज्म के प्रसार के माध्यम से संरक्षण पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। तत्काल आवश्यकता पर विचार करते

हुए भा.वा.अ.शि.प.–उ.व.अ.सं., जबलपुर ने हाल ही में इस गंभीर रूप से लुप्तप्राय पौधों की प्रजाति के प्रसार और संरक्षण के लिए एक परियोजना शुरू की है। आशा है कि परियोजना अवधि के अंत में इस मूल्यवान वृक्ष प्रजाति के प्रसार और संरक्षण के लिए एक दिशा निर्देश का निर्माण करना संभव होगा।

निष्कर्ष

करमल, जो अपने विविध औषधीय अनुप्रयोगों, खाद्य फलों और मूल्यवान लकड़ी के लिए जानी जाती है, मध्य भारत में एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ी है जहाँ इसकी जंगली आबादी तेजी से घट रही है। मध्य प्रदेश वन विभाग द्वारा गंभीर रूप से लुप्तप्राय घोषित, इसकी आनुवंशिक विविधता और पारिस्थितिकीय सुरक्षा के लिए तत्काल संरक्षण उपाय आवश्यक हैं। करमल के प्रसार की चुनौतियाँ इसके घटते जंगली जर्मप्लाज्म को संरक्षित करने की जटिलताओं को रेखांकित करती हैं। इसके प्राकृतिक आवास में इसके निरंतर अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए आगे के शोध और बढ़ी हुई संरक्षण कार्यनीतियों की आवश्यकता है। करमल की शेष जंगली आबादी के संरक्षण को प्राथमिकता देकर और सतत प्रथाओं को बढ़ावा देकर, हम न केवल विशाल औषधीय सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व की प्रजाति की रक्षा करने की आकांक्षा कर सकते हैं, बल्कि भावी पीढ़ियों के प्रति अपनी जिम्मेदारी भी निभा सकते हैं जो जैवविविधता और पारंपरिक ज्ञान पर निर्भर करती हैं।

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम: एक अलंकृत फर्न

डॉ. मनीष कुमार[1], डॉ. नितेश कौशल[2], डॉ. रागिनी भारद्वाज[3],
डॉ. अली हैदर शाह[4], डॉ. प्रियंका ठाकुर[5], डॉ. अजय ठाकुर[6]

परिचय

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम, जिसे आमतौर पर हेयरी वुड फर्न या शील्ड के नाम से जाना जाता है यह फर्न की एक प्रजाति है जो *ड्रायोप्टेरिडेसी* कुल से संबंधित है। *पॉलीस्टाईकम* ग्रीक शब्द पॉली से बना है जिसका अर्थ है अनेक और *स्टिचोस* का अर्थ है क्रम या पंक्तियाँ। यह संभवतः पर्चों पर सोराई की व्यवस्था को संदर्भित करता है। यह फर्न यूरोप के विभिन्न हिस्सों का मूल निवासी है और समशीतोष्ण क्षेत्रों, विशेष रूप से वुडलैंड्स के जंगलों और नम मिट्टी वाले छायांकित क्षेत्रों में पाया जाता है। *पॉलीस्टाईकम* 500 प्रजातियों वाला एक समृद्ध जीनस है *फ्रेजर–जेनकिंस* (1991) ने भारतीय महाद्वीप के हिमालय से 50 प्रजातियों का वर्णन किया। *पॉलीस्टाईकम* भारत में पूरे उत्तर–पश्चिमी हिमालय में जिन स्थानो की ऊंचाई औसत समुद्र तल से 1900–2400 मीटर जैसे नैनीताल, मसूरी, शिमला, मतियाना , डलहौजी, मनाली, सोलन, बड़ोग, चमोली आदि जगहों पर पाया जाता है।

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम का उपयोग

पॉलीस्टाईकम फर्न अपने चमकदार गहरे हरे पत्तों के साथ छायादार बगीचों में और वन परिदृश्यों में हरियाली की सुंदरता को बढ़ाता है। अपने सौंदर्य मूल्य के अलावा यह फर्न कटाव प्रबंधन में सहायक है, जिससे यह ढलानों और किनारों को स्थिर करने के लिए उपयुक्त है। और यहां तक कि रॉक गार्डन के लिए भी उपयोगी साबित हो सकता है। इसके पत्ते का लचीलापन कंटेनर बागवानी और मिश्रित सीमाओं में है यह बगीचे को आकर्षित बनाता है और विविधा प्रदान करता है। *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम* वन्यजीवों को आवास देकर पर्यावरण में भी सुधार करता है। एक बार रोपने के बाद यह कम रखरखाव वाला विकल्प भी है, जो इसे एक लचीली और आकर्षक भूनिर्माण पौधा बनाता है। *पॉलीस्टाईकम* फूलों की सजावट बहुत लोकप्रिय हैं, जो इसकी स्थायी सुंदरता और स्थायित्व के लिए मूल्यवान बनाता है। फूलों के व्यापार में फर्न की पत्तियों का आर्थिक महत्व है, जहाँ शादियों, पंडालों और मंदिरों में सजावट के रूप में उपयोग के लिए इनकी बहुत माँग होती है। फूलों की दुकानो में इन पत्तियों को "पहाड़ी पत्ती" के नाम से जाना जाता है, जो पहाड़ी क्षेत्रों से उनके संबंध पर जोर देती है। *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम* का भारत में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सजावटी मूल्य है, जहां यह विभिन्न उत्सवों और धार्मिक स्थानों में प्राकृतिक सुंदरता प्रदान करता है।

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम सूखे फूलों के साथ उपयोग

इसके पत्तों की प्रकृति के कारण इसका उपयोग फूलों की सजावट या शिल्प में सूखे फूल उत्पाद के रूप में किया जाता है। हालाँकि इसे सूखे फूलों की सजावट और शिल्प में एक आवरण या पूरक वस्तु के रूप में उपयोग किया जा सकता है। सूखे फ्रोंड्स, अपने विशिष्ट चौकोर पत्तों के साथ, सूखे फूलों की सजावट, पुष्पांजलि, गुलदस्ते और शिल्प के साथ–साथ नोटपैड, दीवार चित्र, फाइल कवर और ग्रीटिंग कार्ड को गहराई और कंट्रास्ट प्रदान कर सकते हैं। ये पत्ते टेरारियम, शैडो बॉक्स और यहां तक कि पोटपुरी मिश्रणों में इस्तेमाल होता हैं। घर की साज–सज्जा और पर्यावरण–अनुकूल उपहार रैपिंग में सुंदर पूरक भी बनाते हैं, जो उपहारों को एक प्राकृतिक तत्व प्रदान करते हैं।

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम का महत्व

पॉलीस्टाईकम पारिस्थितिक तंत्र और मानव संस्कृति दोनों में महत्वपूर्ण है। यह फर्न अपने प्राकृतिक आवास में एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक आवास प्रदान करता है, छोटे जानवरों से लेकर पक्षियों, कीडों और उभयचरों तक विभिन्न प्रजातियों के लिए आश्रय और चारा प्रदान करता है। इसकी उपस्थिति जंगली और वुडलैंड क्षेत्रों में जैव विविधा को बढ़ावा देती है, जिससे इन पारिस्थितिकी तंत्रों के सामान्य स्वास्थ्य में सुधार होता है। इसके पारिस्थितिक महत्व से परे, उनके पास शैक्षिक और अनुसंधान मूल्य है, जो फर्न जीव विज्ञान और पारिस्थितिक भूमिकाओं में रुचि रखने वाले वनस्पति विज्ञानियों और पारिस्थितिकीविदों के लिए अध्ययन के विषय के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा, संरक्षण प्रयासों में इस फर्न के मूल पर्यावरण को संरक्षित करना शामिल हो सकता है, ताकि न केवल प्रजातियों को बचाया जा सके बल्कि इसके द्वारा बढ़ावा दिए जाने वाले पारिस्थितिक तंत्र को भी बचाया जा सके। सांस्कृतिक संदर्भों में, उनका पारंपरिक चिकित्सा और लोककथाओं से ऐतिहासिक संबंध है, जो भाग्य, सुरक्षा और लचीलेपन का प्रतीक है। हालाँकि इसके चिकित्सीय अनुप्रयोगों पर व्यापक रूप से शोध नहीं किया गया है, मानव इतिहास में इसका लंबा इतिहास जीवन के कई हिस्सों में इसके महत्व को दर्शाता है।

वानस्पतिक विशेषताएँ

फर्न के बारे में कुछ प्रमुख वानस्पतिक विशेषताएँ और जानकारी यहाँ दी गई हैं:

फ्रोंड्स:

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम फ्रोंड्स सदाबहार और पिन्नेट–पिनाटिफिड होते हैं, जिसका अर्थ है कि वे कई पत्तों में विभाजित होते हैं जो कि पिन्नेट रूप से लोब वाले होते हैं। पत्ते लांस के आकार के और लगभग 100 सेंटीमीटर तक लंबे हो सकते हैं।

पत्रक:

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम पत्रक, जिन्हें पिन्ना के नाम के भी जाना जाता हैं, जिनका एक विशिष्ट आकार होता हैं। ये भारी लोब वाले होते हैं, और प्रत्येक लोब वाले खंड में एक चौकोर या *"स्क्वारोज"* आकार होता हैं, जोकि फर्न को सामान्य नाम देता हैं। पत्ते चमड़े जैसे और गहरे हरे रंग के होते हैं।

प्रकंद:

अधिकांश फर्न की तरह *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम* एक फैलते हुए प्रकंद से बढ़ता हैं, जो एक भूमिगत तना हैं। फर्न का प्रकंद उसे समय के साथ बढ़ने और कालोनियॉ बनाने में मदद करता हैं।

सोराई:

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम की प्रजनन संरचनाएं सोराई नामक संरचनाओं में मोर्चों के नीचे की तरफ स्थित होती हैं। ये सोराई प्रत्येक पत्रक की मध्यशिरा के साथ दो पंक्तियों में व्यवस्थित होती हैं। प्रत्येक सोरस में स्पोरैंगिया होता हैं, जो प्रजनन के लिए बीजाणु उत्पन्न करता हैं।

प्राकृतिक:

पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम नम, छायादार से लेकर आंशिक रूप से छायादार वातावरण पसंद करता हैं। यह आमतौर पर जंगलों और अन्य छायादार स्थानों में पाया जाता हैं, खासकर समशीतोष्ण जलवायु वाले स्थानों में पाए जाते हैं।

पॉलीस्टाईकम की खेती

पॉलीस्टाईकम की खेती खुले मैदान तथा ग्रीनहाउस और कुछ प्रजातियों की घर के अंदर/गमलीय पौधों के रूप में की जाती हैं। खुले मैदान में *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम* का रोपण शरद ऋतु या वसंत ऋतु में, एक अच्छी नमी वाले क्षेत्र में जहां पानी का ठहराव नहीं होता हैं। पौधों को मिट्टी के ढेरों या टीलों पर भी लगाने की सलाह दी जाती

हैं। रोपण के दौरान, मिट्टी में जैविक उर्वरक (3–4 किग्रा/मीटर स्क्वायर) लगाया जाना चाहिए, यदि आवश्यक हो तो रेत मिलाई जा सकती हैं। मिट्टी की अम्लता 5.5–6.5 के बीच होनी चाहिए। गमलों में उगाते समय, मिट्टी, पीट, लीफ ह्यूमस और रेत का मिश्रण समान मात्रा में उपयोग किया जाता हैं, जिसमें प्रत्येक बाल्टी मिट्टी में 150 ग्राम कार्बनिक पदार्थ मिलाया जाता हैं। वसंत और गर्मियों में हर 20–30 दिनो में एक बार सिंचाई के पानी में 15 ग्राम प्रति बाल्टी की मात्रा में जटिल उर्वरक मिलाया जाता हैं। अपने सक्रिय विकास चरण के दौरान *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम* प्रजाति आर्द्र परिस्थितियों में पनपती हैं। मिट्टी को लगातार नम बनाएं रखने के लिए विशेष रूप से गमलों में उगते समय पर्याप्त पानी देना आवश्यक हैं। पूरे शरद ऋतु और सर्दियों के मोसम में खुली भूमि में कम सिंचाई की आवश्यकता होती हैं। जड़ों में पर्याप्त जगह सुनिश्चित करने के लिए हर दो साल में आवश्यकतानुसार प्रत्यारोपण किया जाता हैं। प्रसार की प्राथमिक विधि प्रकंदो को विभाजित करना और उन्हें सीधे जमीन में प्रत्यारोपित करना हैं। वैकल्पिक रूप से, पत्तियों में ब्रूड कलियॉं विकसित होती हैं, जिसे नम मिट्टी में डालने पर नए पौधें उगा सकते हैं। तथा नए पौधें को उगाने के लिए पत्तियों की निचली सतह पर स्थित बीजाणुओं का भी उपयोग किया जा सकता है। उन्हें अलग किया जाता है, नम मिट्टी पर बोया जाता है और हरी परत बनने तक प्लास्टिक फिल्म से ढक दिया जाता है, जब अंकुर 8–10 सेमी ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं तो उन्हें नए गमलों में प्रत्यारोपित किया जाता है। *पॉलीस्टाईकम* प्रजातियों को छाया की आवश्यकता होती है, और नाजुक इनडोर प्रजातियां 15 डिग्री सेल्सियस से नीचे के तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। तथा कुछ प्रजातियां अत्यधिक ठंडे तापमान को सहन कर सकती हैं। फफूंद (फंगल) बीमारियों को रोकने के लिए आवश्यकतानुसार प्रणालीगत कवकनाशी का उपयोग करें। अच्छे विकास के लिए, नियमित आधार पर सूखे या क्षतिग्रस्त पत्तों को हटा दें।

1: *पॉलीस्टाईकम स्क्वैरोसम,* (डी. डॉन)
A: स्वभाव
B: पिन्ना बड़ा हुआ,
C: शिरा–विन्यास पैटर्न और सोराई व्यवस्था को दर्शाने वाला पिनन्यूल बड़ा हुआ

[1]डॉ. मनीष कुमार, सहायक प्राध्यापक, कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, फरीदाबाद
[2]डॉ. नितेश कौशल, शिक्षण सहायक, सी.एस.आई.आर–हिमालय जैव संपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर, हि.प्र.
[3]डॉ. रागिनी भारद्वाज, परियोजना सहयोगी, सी.एस.आई.आर–हिमालय जैव संपदा प्रौद्योगिकी संस्थान, पालमपुर, हि.प्र.
[4]डॉ. अली हैदर शाह, शिक्षण सहायक, एस.के.यू.ए.एस.टी, जम्मू, जम्मू एवं कश्मीर
[5]डॉ. प्रियंका ठाकुर, प्रधान पुष्प वैज्ञानिक एवं सह–निदेशक, अनुसंधान एवं विस्तार,डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हि.प्र.
[6]डॉ. अजय ठाकुर, वैज्ञानिक–जी, भा.वा.अ.शि.प.– वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वर्तमान में कार्बन पदचिह्न के लिए प्रयोगशालाओं का योगदान

डॉ. पी.एस.श्रीकांत
भा.वा.अ.शि.प.- वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की कुल मात्रा को कार्बन फुटप्रिंट के संदर्भ में मापा जाता है जो किसी व्यक्ति, संगठन, घटना या उत्पाद द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। कार्बन फुटप्रिंट की गणना करने के लिए ग्रीनहाउस गैसों को छोड़ने वाली सभी गतिविधियों पर विचार करना आवश्यक है। इसमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह के उत्सर्जन शामिल हैं। प्रत्यक्ष उत्सर्जन ऐसे उत्सर्जन हैं जो मापी जा रही इकाई के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्रोतों से आते हैं, जैसे किसी कारखाने में ईंधन का दहन या किसी कंपनी के वाहन से उत्सर्जन। अप्रत्यक्ष उत्सर्जन वे उत्सर्जन हैं जो इकाई के नियंत्रण से बाहर होते हैं, लेकिन फिर भी संबंधित होते हैं। कार्बन फुटप्रिंट की गणना करने के लिए सभी प्रासंगिक गतिविधियों जैसे ऊर्जा उपयोग, परिवहन, अपशिष्ट और भोजन की खपत पर सटीक और पूर्ण डेटा होना महत्वपूर्ण है। ऑनलाइन कैलकुलेटर, जीवन चक्र आकलन और ग्रीनहाउस गैस सूची सहित अपने कार्बन पदचिह्न की गणना करने के लिए व्यक्तियों, संगठनों और सरकारों की मदद करने के लिए कई उपकरण और पद्धतियां उपलब्ध हैं। विशिष्ट गतिविधियों से जुड़े ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए ये विधियाँ आमतौर पर उत्सर्जन कारकों का उपयोग करती हैं। एक बार कार्बन फुटप्रिंट की गणना हो जाने के बाद इसका उपयोग उन क्षेत्रों की पहचान करने के लिए किया जा सकता है जहां उत्सर्जन को कम किया जा सकता है, और उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य निर्धारित किए जा सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और अधिक स्थायी भविष्य की दिशा में काम करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के लिए कार्बन फुटप्रिंट को कम करना महत्वपूर्ण है, जो ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में वृद्धि के कारण होता है। कार्बन पदचिह्न को कम करने के लिए कदम उठाकर व्यक्ति, संगठन और सरकारें हमारे ग्रह के लिए एक स्थायी और स्वस्थ भविष्य बनाने में योगदान कर सकती हैं।

जैसे–जैसे विज्ञान के विभिन्न विषयों के लिए, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में वृद्धि हुई है अनुसंधान प्रयोगशालाएँ उपकरणों और सामग्रियों से अच्छी तरह सुसज्जित हो गई हैं। इन प्रयोगशालाओं में बड़ी मात्रा में ऊर्जा, सामग्री, विशेष रूप से एकल उपयोग वाले प्लास्टिक की आवश्यकता होती है। उपभोग्य सामग्रियों के कार्बन फुटप्रिंट को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि कई शोध संस्थान और प्रयोगशालाएं कार्बन तटस्थता (वू एट अल., 2022) के लिए प्रतिबद्ध हैं। प्रयोगशालाओं में प्रयोग की जाने वाली भौतिक, रासायनिक और जैविक सामग्री संभावित खतरों में शामिल हैं। हानिकारक सामग्रियों से बने उपकरणों और लैबवेयर का उचित तरीके से निराकरण करना वर्तमान में एक बहुत ही जोखिम भरा कार्य है, जिससे भौतिक दक्षता को अधिकतम करने के लिए चक्रीय आर्थिक सिद्धांतों को लागू किया जा सके। ऊर्जा की मांग को कम करने और भौतिक दक्षता को अधिकतम करने के लिए पुनः उपयोग और पुनर्चक्रण अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के दो चरण हैं (वेलेंटर्फ और पर्नेल, 2021)। इन दो चरणों को लागू करना व्यावहारिक रूप से कठिन है, क्योंकि सामग्रियों के पुनः उपयोग और पुन र्चक्रण के लिए बहुत अधिक ऊर्जा या रासायनिक रूप से विसंदूषित (शुद्धि) प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है। प्रयोगशाला के वातावरण में हालांकि पुनर्चक्रण से आने वाली उपभोक्ता वस्तुओं को जैव सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कई देशों द्वारा रोका जाता है। संभावित संदूषण जोखिमों को प्रभावी ढंग से कम करने के लिए प्रयोगशाला के

कचरे को आमतौर पर ऊंचे तापमान पर जलाया जाता है। कई मामलों में दूषित सामग्रियों के लिए न्यायोचित कठोर नियम एकल–उपयोग वाले लैबवेयर को अपनाते हैं। प्रयोगशालाओं में एकल–उपयोग वाले प्लास्टिक को अपनाने से पहले, प्रयोगशालाओं में कांच के बर्तनों का उपयोग किया जाता था। कांच के बने पदार्थ संक्षारक पदार्थों के लिए रासायनिक प्रतिरोध हैं, और अनुसंधान स्थानों के भीतर एक महत्वपूर्ण संसाधन बने हुए हैं। कांच के बने पदार्थ और उनके पुनः उपयोग के भी नुकसान हैं:

1) **परिशोधन या पुनः** उपयोग के लिए भारी सफाई की आवश्यकता होती है, जिसके परिणाम स्वरूप रासायनिक रूप से दूषित अपशिष्ट जल होता है।

2) **पुनः** उपयोग के लिए वस्तुओं को संसाधित करने के लिए मानव शक्ति की तकनीकी सहायता की जरूरत होती हैं।

3) ग्लास आमतौर पर प्लास्टिक की तुलना में अधिक महंगा होता है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोगों की लागत में वृद्धि होती है।

4) ग्लास उत्पादन के लिए प्राथमिक सामग्री निकालने के लिए खनन कार्य की आवश्यकता होती है, यह उच्च ऊर्जा प्रक्रिया है। प्रयोगशालाएं पुनः उपयोग प्रक्रिया सामग्री या कांच के बने पदार्थ को छोड़ने की कोशिश कर रही हैं क्योंकि ये प्रयोगशाला की लागत में वृद्धि कर रहे हैं, आगे चलकर प्रयोगशालाओं में एकल उपयोग वाले प्लास्टिक की खपत और निर्भरता पर अधिक ध्यान दे रहे हैं (होवेस, 2019)। विनिर्माण के स्रोत के रूप में जीवाश्म ईंधन के उपयोग के कारण जलवायु परिवर्तन के खिलाफ एकल उपयोग वाले प्लास्टिक को निशाना बनाया जाता है (हेइडब्रेडर एट अल., 2020)। उपयोग किए गए एकल उपयोग वाले प्लास्टिक को भस्मीकरण के लिए भेजा जाता है, यह एक कार्बन गहन प्रक्रिया और अस्थिर संचालन है (टिन्जी और वेब., 2020)। इन प्रभावों को कम करने के लिए, कई प्रयोगशालाओं ने प्रयोगशाला प्लास्टिक के पुनः उपयोग या पुनः चक्रण में सुधार करना शुरू कर दिया है (होवेस, 2019 (अल्वेस एवं अन्य, 2021)। फिर भी, ऐसे अनुप्रयोगों की समय के साथ मांग बड़े पैमाने पर होने की संभावना है।

हाल ही में कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य (सीओ2ई) पदचिह्न की गणना स्तनधारी कोशिका और जीवाणु संवर्धन के लिए चार सामान्य रूप से उपयोग की जाने वाली एकल उपयोग की वस्तुओं के लिए की गई:– 6 सें.मी. पेट्री डिश, पाश्चर पिपेट, एक लीटर कोनिकल कल्चर फ्लास्क और 50 मिली लीटर कोनिकल ट्यूब (फ़ार्ले और निकोलेट, 2023)। उपयोग परिदृश्यों की गणना एकल उपयोग प्लास्टिक, पुनः उपयोग किए गए ग्लास और प्रति सप्ताह 1 आइटम के लिए 1000 आइटम प्रति सप्ताह (52000 प्रति वर्ष) के लिए प्लास्टिक आइटम का पुनः उपयोग करने के लिए की गई थी। पुनः उपयोग परिदृश्य के लिए, एक सप्ताह के पुनः उपयोग चक्र को माना जाता है, जिससे आइटम की आपूर्ति के केवल 1 सप्ताह की आवश्यकता होती है। प्रत्येक परिदृश्य के लिए, धोने के लिए पदचिह्न (बिजली, पानी की खपत और उपचार), ऑटोक्लेविंग (बिजली, पानी की खपत और उपचार), उत्पादन (निष्कर्षण, प्राथमिक प्रसंस्करण, बिक्री के बिंदु पर सामग्री का निर्माण और परिवहन), सुखाने (बिजली) और निपटान (ऊर्जा वसूली के साथ भस्म)। एकल उपयोग प्लास्टिक के मामले में, यह मान लिया गया है कि सभी आइटम अकेले इस्तेमाल किए गए और जलाए गए। पुनः उपयोग परिदृश्य के लिए, कांच और प्लास्टिक दोनों वस्तुओं के लिए, प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत टूटना माना जाता है, जिसके लिए निपटान पदचिह्न शामिल है। ऑटोक्लेविंग को 0–402 क्यूबिक मीटर की पानी की खपत और 64–375 किलोवाट (फ़ार्ले और निकोलेट, 2022) की बिजली की खपत के साथ प्रत्यक्ष भाप उत्पादन में होने का अनुमान लगाया गया था। 18–32 किलोवाट की दैनिक बिजली की खपत

के साथ, पंखे की सहायता से उच्च दक्षता वाले 425–लीटर सुखाने वाले कैबिनेट में वस्तुओं को सुखाने का अनुमान लगाया गया था।

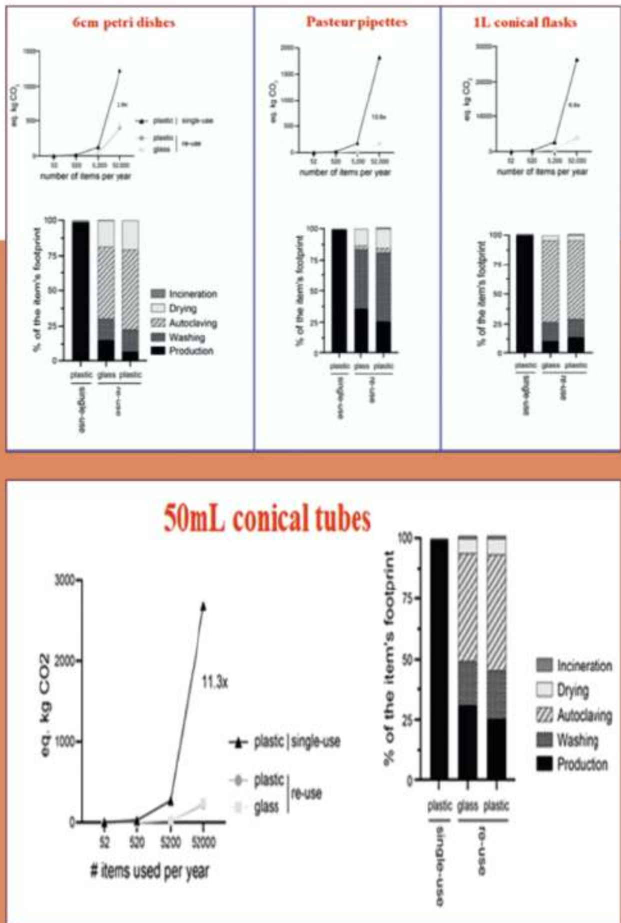

चित्र :6 सें.मी. पेट्री डिश, पाश्च रपिपेट और एक लीटर शंक्वाकार फ्लास्क, 50 मिली लीटर शंक्वाकार ट्यूबों के लिए एकल–उपयोग प्लास्टिक या प्लास्टिक या कांच के पुनः उपयोग के परिणाम स्वरूप कार्बन डाइऑक्साइड समतुल्य (सीओ2ई)। धोने, उत्पादन, सुखाने, ऑटोक्लेविंग और भस्मीकरण के प्रति जीवन चक्र चरणों में सीओ2ई का प्रतिशत। (प्लोस वन 18, संख्या 4 (2023) से पुनः प्रस्तुतः ई0283697)

इसके अतिरिक्त, ऐसे मामले में जहां अध्ययन किए गए आइटम एक उपकरण को भरने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, मान लें कि आधा भरा उपकरण नहीं चल रहा था और अन्य आइटम रन को पूरा कर रहे थे। धोने के लिए ऊर्जा और पानी की मांग के उचित अनुमान की अनुमति देने के लिए 1 वस्तु को धोने के लिए आवश्यक सतह और एक डिशवॉशर के भीतर एक वाशिंग ट्रे में फिट होने वाली वस्तुओं की संख्या की गणना की जाती है जो 2 ट्रे में फिट हो सकती है। फिर प्रति डिशवॉशर फिट होने वाली वस्तुओं की संख्या के अनुसार प्रति रन लोड फैक्टर को अनुकूलित किया। इसी प्रकार सुखाने वाले कैबिनेट के लोड कारक का अनुमान लगाया गया है, निर्माता की जानकारी के अनुसार अधिकतम 12 ट्रे के साथ सुखाने वाले कैबिनेट की 1 ट्रे की सतह से आइटम की सतह को विभाजित किया गया है। ऑटोक्लेविंग के लिए, 1 आइटम के कब्जे वाले वॉल्यूम की गणना करें और ऑटोक्लेव के आंतरिक वॉल्यूम द्वारा आइटम के वॉल्यूम को विभाजित करके लोड फैक्टर का अनुमान लगाएं। यहाँ, सीओ2ई कार्बन डाइऑक्साइड के समतुल्य है, जिसमें सीओ2 के साथ मीथेन और विभिन्न नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसी और गैसें शामिल हैं। एकल उपयोग सीओ2ई फुटप्रिंट में कच्चेमाल का निर्माण, मोल्डिंग, परिवहन और निराकरण शामिल है। पुनः प्रयोज्य कांच के बने पदार्थ के लिए, पदचिह्न में कच्चे माल का निर्माण, मोल्डिंग, परिवहन, धुलाई, ऑटोक्लेविंग और सुखाने शामिल हैं। धुलाई से जुड़े पदचिह्न में बिजली और जल उपचार पदचिह्न दोनों शामिल थे। इसके अलावा, एकल–उपयोग की वस्तुओं की धुलाई, सुखाने और पैकेजिंग के लिए शामिल उपकरण शामिल नहीं थे। चूंकि कांच के सामान के टूटने की संभावना अधिक होती है, इसे प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत टूटना माना जाता है। इसके अलावा एक साप्ताहिक धुलाई ऑटोक्लेविंग सुखाने चक्र की कल्पना की गई। नतीजतन, प्रतिवर्ष आवश्यक पुनः प्रयोज्य ग्लास ट्यूबों की अनुमानित संख्या एकल–उपयोग प्लास्टिक ट्यूबों की तुलना में लगभग 52 गुना कम है। वस्तुओं के पुनः उपयोग ने एकल–उपयोग की वस्तुओं की तुलना में सीओ2ई

पदचिह्न को काफी कम कर दिया। पेट्रीडिश के पुनःउपयोग में सबसे कम 2.8 गुना कमी आई, जबकि फ्लास्क के पुनःउपयोग में 6.9 गुना और पाश्च रपिपेट में सीओ2ई पदचिह्न में 10.6 गुना कमी आई। सभी परिदृश्यों में एकल–उपयोग वाली प्लास्टिक ट्यूबों का सीओ2ई पदचिह्न उत्पादन (लगभग 99 प्रतिशत पदचिह्न) से जुड़ा था, जबकि भस्मीकरण पदचिह्न का केवल 1 प्रतिशत था। पुनः उपयोग के परिदृश्य में, पेट्रीडिश और फ्लास्क में पदचिह्न का समान विभाजन था। पेट्रीडिश परिदृश्य के लिए 51 प्रतिशत के साथ ऑटोक्लेविंग ने अधिकांश पदचिह्न के लिए जिम्मेदार है, जबकि फ्लास्क परिदृश्य में 69 प्रतिशत तक बढ़ रहा है। उत्पादन और धुलाई सीओ2ई पदचिह्न के 10 से 15 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है, जबकि सुखाने की सीमा 4.4 प्रतिशत से 18.4 प्रतिशत (पेट्रीडिश परिदृश्य) है। इसके विपरीत, पाश्च रिपिटेट के लिए पुनः उपयोग के परिदृश्य से पता चला कि पदचिह्न का प्रमुख हिस्सा 47.9 प्रतिशत पदचिह्न के साथ धो रहा था और इसके बाद उत्पादन 35.8 प्रतिशत था। अंत में निष्कर्ष निकाला कि लैबवेयर के पुनः उपयोग नए कल–उपयोग की वस्तुओं की तुलना में सीओ2ई पदचिह्न को कम कर दिया, जहां अंतर एकल–उपयोग वाली वस्तु के उत्पादन के लिए जिम्मेदार थे। इस गणना में सीओ2ई पदचिह्न के लिए सफाई, धुलाई और डिटर्जेंट उपयोग पर विचार किया जाता है, इन अवलोकनों के लिए आगे के अध्ययन की आवश्यकता होती है।

जुनिपेरस पॉलीकार्पस (शुकपा): उत्तर पश्चिमी हिमालय के शीत रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाये जाने वाला महत्वपूर्ण वृक्ष प्रजाति

डॉ. स्वर्ण लता
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

जुनिपेरस पॉलीकार्पस का वृक्ष

उत्तर पश्चिमी हिमालय में शीत रेगिस्तान केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख एवं हिमाचल प्रदेश के लाहौल एवं स्पीति जिले एवं किन्नौर जिले के पूह उपमंडल में पाये जाते हैं। *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* भारत के शीत रेगिस्तानी क्षेत्रों का महत्वपूर्ण मूल वृक्ष प्रजाति है जो स्थानीय निवासियों के विभिन्न रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसे आमतौर पर हिमालयन पेंसिल सीडार के नाम से जाना जाता है। इसके वितरण क्षेत्रों में इसे स्थानीय समुदायों द्वारा शूकपा, सुरू, शूर, सुरुख एवं चिलगी के नाम से भी जाना जाता है । यह क्यूप्रेसेसी कुल का सदस्य है। पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों में *जुनिपेरस* की मुख्यतः तीन जड़ीनुमा प्रजातियां (*जुनिपेरस कोम्युनिस, जुनिपेरस स्क्योमेटा* एवं *जुनिपेरस इंडिका*) तथा एक वृक्ष प्रजाति (*जुनिपेरस पॉलीकार्पस*) पायी जाती है। *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* के जंगलों को दुनिया के सबसे पुराने और बेहद धीमी गति से बढ़ने वाले जंगलों में से एक माना जा सकता है, जिस कारण इन्हें "जीवित वन जीवाश्म" भी कहा जाता है। यह हिमाचल प्रदेश के स्पीति घाटी में पाये जाने वाली एकमात्र शंकुधारी वृक्ष प्रजाति भी है।

विवरण

जुनिपेरस पॉलीकार्पस एक सदाबहार शंकुधारी वृक्ष है जिसकी ऊंचाई लगभग 9–14 मीटर होती है । आमतौर पर यह शंक्वाकार व गोलाकार होता है। यह एक डायोसियस पौधा है जिसमें नर शंकु और मादा शंकु के साथ नर और मादा पौधे अलग–अलग होते हैं। यह पौधा प्रचुर शाखाओं के साथ होता है। इसकी पत्तियाँ 6–8 मिमी लंबी हरी सुई के आकार की तथा 1–2.5 मिमी लंबी स्केल–जैसी होती

हैं। मादा शंकु 5–10 मिमी लंबे, पीले भूरे रंग के, अंडाकार बेरी जैसे होते हैं जो युवा अवस्था में हरे व परिपक्व होने पर नीले–काले रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक मादा शंकु में 3–6 बीज होते हैं। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार, आयताकार, चार से नौ के समूह में, गहरे हरे रंग के जो डंठल के साथ तने के शीर्ष पर एक चक्कर में व्यवस्थित होते हैं। इसके फूल हल्के हरे–पीले रंग के होते हैं जो तने के शीर्ष पर अकेला होता है। इसके फल (बेरी) अंडाकार व गोल होते हैं जो पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। इसके एक फल में 20–50 बीज होते हैं। बीजों पर लाल एरिल का आवरण होता है। फूल अप्रैल–मई के महीने में आते हैं और जुलाई–सितंबर में फल परिपक्व होते हैं। इसके बीज कई वर्षों तक निष्क्रिय रह सकते हैं। अंकुर पहले वर्ष में प्रजनन नहीं करते हैं और पौधों को प्रजनन परिपक्वता में कम से कम 3 साल लगते हैं। मधु एट अल, 2010 अनुसार इसके प्राकृतिक आवासों में इसके बीज अंकुरण की दर 29% है।

वितरण एवं आवास

पूरे विश्व में जीनस *जुनिपेरस* की लगभग 60 प्रजातियाँ एवं 28 किस्में पायी जाती है जो कि मुख्यतः उतरी गोलार्ध में यूरोप और उत्तरी अमेरिका के समशीतोष्ण क्षेत्र में ही पायी जाती है। विश्व में *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* का वितरण सीमित है तथा यह प्रजाति अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल, चीन एवं भारत के समशीतोष्ण और अलपाईन क्षेत्रों में पायी जाती है। भारत में यह प्रजाति हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड,जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख केंद्र शासित प्रदेशों में 1800–4200 मीटर की ऊंचाई पर पायी जाती है । भोजपत्र (*बेट्रूला यूटिलिस*), देवदार (*सिडरस देओदारा*), कायल (*पाईनस वालीचियाना*), पोपलर (*पोपुलस*), अखरोट (*जुग्लान्स रिजीआ*), चूली (*प्रूनस आरमीनियका*), होम्बू (*माईरिकेरिया ऐलिगेनस*), सोमलता (*एफिडरा जीरारडियाना*), सिया (*रोजा वेबियाना*), ब्यूर (*आर्टिमिसिया मेरीटिमा*), कूष्टिग (*सोरबेरिया टोमेंटोसा*), जुपफा (*हाईसोपस ओफीसीनेलिस*), थुकलांग (*हायोसायनमस नाईजर*) इत्यादि इसके साथ पायी जाने वाली मुख्य पौध प्रजातियाँ है।

उपयोगिता

यह प्रजाति ट्रांस हिमालय के शीत रेगिस्तान में रहने वाले स्थानीय समुदाय के सामाजिक–सांस्कृतिक और धार्मिक उपयोग के कारण अत्यधिक महत्व रखता है और इसे बौद्ध समुदायों द्वारा पवित्र भी माना जाता है जिस कारण इसे अक्सर बौद्ध मंदिरों के आस पास देखा जाता है। जुनिपेर टहनियों एवं पत्तों में अत्याधिक सुगंध के कारण, स्थानीय लोग इसकी पत्तियों और टहनियों का उपयोग धूप के तौर अपने इष्ट देवी देवताओं की पूजा एवं बौद्ध अनुष्ठान कार्यों की पूर्ति हेतु करते हैं जिसके लिए शुकपा की सूखी पत्तियों और टहनियों को जलते कोयले के ऊपर डाल दिया जाता है ताकि सुगंधित धुआं उत्पन्न हो। सुगन्ध को बढ़ाने के लिए लोग इसमें खम्पा (*टैनासेटम डोलिकोफिलम*), पालु (*वालधिमिया गलेब्रा*), गुगलांग (*जूरीनिया मैक्रोसिफेला*), सिया (*रोजा फोएटिडा*) और लामा उह (*रोजा वेबबियाना*) भी मिलाते है। इसकी पत्तियों में अत्यधिक खुशबू के कारण धूप के तौर पर अंतरराष्ट्रीय लवी मेले में इसकी पत्तियों का व्यापार भी होता है। इसकी पवित्रता के कारण इसे बौद्ध मंदिरों के मूर्तियों के भीतर के खोखली जगह को भरने में तथा प्रत्येक घर के छत के झंडों के शीर्ष पर घर में सकारात्मक ऊर्जा बनाए रखने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। जुनिपेर की लकड़ी को मजबूत, टिकाऊ और अत्यधिक कवक प्रतिरोधी माना जाता है जिस कारण इसकी लकड़ी के लट्ठों का उपयोग मंदिरों, बौद्ध मठों एवं घरों में स्तंभ, दरवाजें और खिड़की बनाने में भी किया जाता है। इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में भी उपयोग होती है तथा छाल का उपयोग मिट्टी के घरों की छतों में भी होता है। इसकी लकड़ियों से ड्रम, डिब्बे एवं सन्दुक भी बनाये जाते है जिसका उपयोग शराब, अनाज एवं सूखे फलों के भंडारण के लिए किया जाता है। इस प्रजाति की औषधीय उपयोगिता भी है तथा यह पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली में तंत्रिका विकारों, हृदय संबंधी रोगों और गुर्दे के विकारों को ठीक करने में होती है। यह प्रजाति शीत रेगिस्तान के नाजुक पारितंत्र को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि यह हिमालय के शीत रेगिस्तान के वनों की मुख्य प्रजाति हैं तथा हिमस्खलन और तेज

हवाओं द्वारा होने वाले भू–क्षरण को भी रोकता है।

संरक्षण की स्थिति

आईयूसीएन द्वारा वर्ष 2011 में वैश्विक डेटा मूल्यांकन के दौरान *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* को निम्न संकटग्रस्त श्रेणी में रखा गया है। परंतु वर्तमान में इसके अत्याधिक उपयोग और संग्रह के कारण इस प्रजाति के वृक्षों व इसके प्राकृतिक आवासों को अत्याधिक क्षति हो रही है तथा इसकी प्राकृतिक संख्या में लगातार कमी आ रही है। इसके प्राकृतिक आवासों में मानवजनित कारणों मुख्यतः पशुओं द्वारा अत्यधिक चरने से भी इसके युवा पौधे नष्ट हो रहे हैं तथा लंबे समय तक बीज प्रसुप्ति के कारण भी इसके बीजों में अंकुरण बहुत कम होता है जिस कारण इसके प्राकृतिक और कृत्रिम आवासों में पुनर्जनन की क्षमता बहुत कम है। स्थानीय सरकार, संबंधित अधिकारियों एवं स्थानीय समुदायों में उचित समन्वय की कमी व उचित प्रबंधन योजना का अभाव भी जुनिपेर प्रजाति की आबादी में गिरावट के लिए जिम्मेदार कारणों में से एक अन्य है। इसे ध्यान में रखते हुए भा.वा.अ.शि.प–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला ने भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद द्वारा वित पोषित परियोजना के अंतर्गत *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* पर शोध कर बीज, नर्सरी और वृक्षा रोपण तकनीक विकसित की तथा इसके गुणवत्ता वाले पौधे उगा कर हिमाचल प्रदेश के वन विभाग, लद्दाख के वन विभाग एवं स्पीति घाटी और लद्दाख के किसानों को वितरित किए ताकि जुनिपेर वृक्ष भविष्य में हिमालय के शीत रेगिस्तान में रहने वाले स्थानीय समुदायों की सामाजिक और धार्मिक जरूरतों को पूरा करने एवं इस क्षेत्र की परिस्थितिकी सुधार में योगदान दे सकें। शीत रेगिस्तान भारत में पारिस्थितिक रूप से सबसे नाजुक जैव–भौगोलिक क्षेत्रों में से एक हैं तथा *जुनिपेरस पॉलीकार्पस* के इस क्षेत्र की मूल एवं मुख्य प्रजाति होने के साथ इसके बहुउपयोग के कारण उत्तर पश्चिम के नाजुक शीत रेगिस्तानों में सतत विकास के लिए इस प्रजाति के संरक्षण एवं सतत प्रबंधन की अत्यंत आवश्यकता है।

टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम: उपयोग, प्रभावी बीज भंडारण एवं नर्सरी प्रबंधन

डॉ. नमिता एन.के, डॉ. मनीषा थपलियाल, सुश्री दीपिका
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम

टेरोस्पर्मम एक प्राचीन ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है "पंखों वाले बीज" जिसे पारंपरिक रूप से स्टरकुलियासी कुल के भीतर वर्गीकृत किया गया है और विस्तारित मालवेसी कुल में भी वर्गीकृत किया गया है। जीनस में लगभग 25 प्रजातियां शामिल हैं, जो भारत से जावा तक वितरित दक्षिण पूर्व एशिया की मूल प्रजाति हैं। भारत में *टेरोस्पर्मम* प्रजाति की ग्यारह प्रजातियाँ बताई गई हैं।

टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम को आमतौर पर कनक चंपा, मुचाकुंडा, कर्णिकार या बायूर वृक्ष के रूप में जाना जाता है। यह एक पर्णपाती वृक्ष है जो लगभग 24 मीटर से 30 मीटर की ऊंचाई तक पहुंचता है और दक्षिण पूर्व एशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। इसे उष्णकटिबंधीय देशों में रास्तों और बगीचों के किनारे एक सजावटी पेड़ के रूप में लगाया जाता है, जो अपनी सुगंधित फूल और पत्तियों की विशेषताओं के कारण प्राकृतिक छटा को सौंदर्यपूर्ण आकर्षण प्रदान करता है। प्रजाति की प्राकृतिक श्रृंखला हिमालय की तलहटी और मध्य और पूर्वी भारत के पहाड़ी हिस्सों से लेकर म्यांमार (बर्मा) से होते हुए दक्षिणी चीन तक 4,000 फीट की ऊंचाई तक फैली हुई हैं। इसके प्राकृतिक क्षेत्रों में, प्रजातियाँ नदी के किनारे, सदाबहार जंगलों, नम घाटियों, आर्द्र तराई के जंगलो और दलदलों में विविध आवासों में पाई जाती हैं।

इस प्रजाति का महत्वपूर्ण औषधीय महत्व है। छाल और फूलों से तैयार टॉनिक का उपयोग चेचक, सूजन, अल्सर, ट्यूमर, रक्त समस्याओं और कुष्ठ रोग के इलाज के लिए किया जाता है। भारतीय संस्कृति में प्रजातियों का विशेष महत्व है और इन्हें पचास रुपये के स्टांप मोहर पर भी दर्शाया जाता है। प्रजातियों में वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड को संग्रहित करने की महत्वपूर्ण

क्षमता होती है। *टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम* 1909.48 ग्राम का उच्च कार्बन पृथक्करण मूल्य देता है, जो तुलनात्मक रूप से कई संबंधित प्रजातियों जैसे *एगले मार्मेलोस* (बेल), *अपानामिक्सिस पॉलीस्टैच्या* (हरिन–हरा), *ट्रेमा ओरिएंटलिस* (भारतीय बिछुआ), *आर्टोकार्पस हेटेरोफाइलस* (कटहल), *होलरिना प्यूबसेन* (इंद्रजव), *ग्रेविया एशियाटिका* (फलसा), आदि से अधिक है।

फल की विशेषता धीमी वृद्धि है, जो पेड़ पर बना रहता है और कई पंखों वाले बीज छोड़ने के लिए पूरी तरह परिपक्व होने में लगभग एक वर्ष लगता है। प्रजातियों की ये विशेषताएं अन्य तेजी से बढ़ने वाले पौधों से प्रतिस्पर्धा करती प्रतीत होती हैं और व्यापक रूप से वितरित नहीं होती हैं। हालाँकि, प्रजातियों मुख्य रूप से मिश्रित डिप्टरोकार्प और जलोढ़ और चूना पत्थर सब्सट्रेट पर द्वितीयक जंगलों में पनपती हैं। *टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम* को IUCN 2020 द्वारा सबसे कम चिंता वाली श्रेणी में सूचीबद्ध किया गया है। हालाँकि, वनों की कटाई, आवास विखंडन, आक्रामक प्रजातियाँ, और जलवायु परिवर्तन से जुड़ी समस्याएं जैसे वर्षा और तापमान पैटर्न में भिन्नता और कीट और बीमारी के हमले संभावित रूप से इस प्रजाति की आबादी को खतरे में डाल सकते हैं। *टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम* के अस्तित्व को सुनिचित करने और इसके प्राकृतिक वास में जैव विविधता को बनाए रखने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका सुनिश्चित करने के लिए संरक्षण प्रयास महत्वपूर्ण हैं। *टेरोस्पर्मम* प्रजातियाँ प्राथमिक वनों में बिखरी हुई या स्थानीय रूप से द्वितीयक वनों में प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं। इन प्रजातियों को फीनोलॉजिकल चक्र पूरा करने के लिए शुष्क मौसम, पर्याप्त धूप के साथ मौसमी वर्षा और गर्म जलवायु चाहिए। ये प्रजातियाँ विभिन्न प्रकार की मिट्टी में पनप सकती हैं लेकिन उपजाऊ, आर्द्रयुक्त मृदा में ज्यादा उगते हैं।

उपयोग:

यह पौधा अपनी सौन्दर्यात्मक आकर्षण और सांस्कृतिक महत्व के कारण विशेष रूप से हिंदू समुदायों के बीच लोकप्रिय है। इसका उपयोग धार्मिक उद्देश्यों, पैकेजिंग और प्लाईवुड बनाने के लिए किया जाता है। सुगंधित फूल एक सुखद खुशबू छोड़ते हैं और प्राकृतिक कीट विकर्षक के रूप में काम करते हैं। इसकी व्यावहारिकता और मध्यम लकड़ी के मूल्य के कारण छोटे पैमाने पर लकड़ी के काम को प्राथमिकता दी जाती है।

बीज संग्रहण एवं रख–रखाव

परिपक्व फल (वुडी कैप्सूल) मानसून की शुरुआत से पहले मार्च से जून तक एकत्र किए जाते हैं। वुडी कैप्सूल को एक बड़ी धातु की थाल में फैलाया जाता है और इसको विभाजित करने के लिए सूरज की रोशनी में सुखाया जाता है। बीजों को फटे हुए कैप्सूल से सावधानीपूर्वक निकाला जाता है और उनकी व्यवहार्यता बनाए रखने के लिए ठंडी, सूखी जगह पर संग्रहित किया जाता है। बीजों को सिलिका जेल में सुखाने की विधि का उपयोग करके सूखाया जा सकता है, इसमें बीज और सिलिका जेल को 1:1 के अनुपात में लिया जाता है। इस प्रक्रिया से बीज में नमी की मात्रा 10% से कम कर दी

जाती है। इस विधि में बीज को कमरे के तापमान पर दो वर्ष से अधिक समय तक भांडारित किया जा सकता है।

नर्सरी प्रसार

परिपक्व फलों को मानसून की शुरुआत से पहले मार्च माह से एकत्र करना शुरू किया जाता है, और वुडी

कैप्सूल को तोड़ने और बीज निकालने के लिए सूरज की रोशनी में सुखाया जाता है। प्रति किलोग्राम बीज की संख्या लगभग 6000 से 6500 तक होती है। बुआई से पहले बीजों को 6 से 12 घंटे तक पानी में भिगोया जाता है। समतल स्थिति में बीज बोकर अंकुर सीधे नर्सरी बेड या पॉलीबैग में उगाए जाते हैं। बीजों को अच्छी जल निकासी वाली, रेतीली खाद वाली मिट्टी में बोया जाता है। अंकुर की वृद्धि अच्छी तरह से सूखी मिट्टी, गर्म तापमान, पर्याप्त धूप और $20^{\circ}c$ से $25^{\circ}c$ के इष्टतम तापमान के साथ नियमित रूप से पानी देने से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। पौधों को पाले से सुरक्षा की आवश्यकता होती है। मौसमी रूप से, वे वसंत और गर्मियों में सबसे अच्छे से पनपते हैं, सर्दियों में कम पानी की आवश्कता होती है। बीज आमतौर पर छह सप्ताह के भीतर अंकुरित हो जाते हैं। नर्सरी बेड में, कम से कम 45 से.मी. की ऊंचाई वाले पौधों को मानसून या वर्षा के मौसम में प्रत्यारोपित किया जाता है। वे कभी–कभी *एलफड्स, मीली* बग्स और जड़ सड़न जैसे सामान्य कीटों और बीमारियों से पीड़ित होते हैं। कीटों के उपचार में प्रणालीगत कीटनाशक और जैविक नियंत्रण विधियाँ प्रभावी हैं। सफेद सड़न और सफेद रेशेदार सड़न फोम्स के कारण होता है।

टेरोस्पर्मम एसोरीफोलियम के विभिन्न बीज अंकुरण चरण और नवोद्भिद

भंडारण के दौरान कीड़ों और कवक का प्रबंधन

बीज भंडारण में भंडारण क्षेत्र / गोदाम, बीज भंडारण बैग और कंटेनरों को 0.3% पाइरेथ्रिन या 0.12% मेलाथियोन के 3 लीटर प्रति $1000m^2$ की दर से कीटाणुरहित करना है। भंडारण के दौरान फंगल हमले की रोकथाम के लिए, बीज को टॉपसिन एंड एम या बेनलेट @ 0.2% से उपचारित करने की सलाह दी जाती है।

नर्सरी पौधों में रोग का नियंत्रण

लीफ ब्लाइट आमतौर पर *टेरोस्पर्मम एसेरीफोलियम* में अल्टरनेरिया प्रजाति के कारण होता है। जिसे नीम के तेल के साथ *ट्राइकोडर्म* के मिश्रण से नियंत्रित किया जा सकता है।

उत्तर पूर्व भारत के परिप्रेक्ष्य में वन परिदृश्य में जलागम प्रबंधन

डॉ. निबेदिता गुरू
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

सरांश

वन परिदृश्यों में जलागम प्रबंधन दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है, विशेष रूप से पूर्वोत्तर भारत जैसे क्षेत्रों में, जिसे इसकी अनूठी स्थलाकृति, समृद्ध जैव विविधता और महत्वपूर्ण जल संसाधनों द्वारा वर्गीकृत किया गया है। जलागम प्रबंधन में जलागम के भीतर जल संसाधनों की व्यापक योजना और प्रबंधन शामिल है, जो भूमि की एक सीमा है जहां सभी पानी एक सामान्य आउटलेट में बहता है। वन जल विज्ञान में, यह प्रबंधन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वन जल विज्ञान चक्र को विनियमित करने, पानी की गुणवत्ता बनाए रखने और जैव विविधता का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

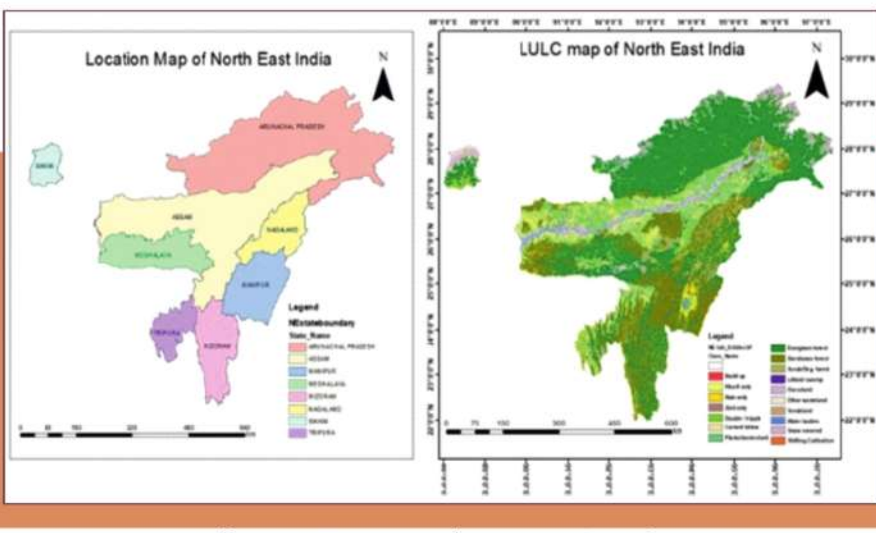

पूर्वोत्तर भारत का स्थान और एलयूएलसी मानचित्र

पूवोत्तर भारत में महत्व

पूर्वोत्तर भारत, जिसमें असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा जैसे राज्य शामिल हैं, व्यापक वन आवरण और प्रचुर वर्षा से संपन्न है। क्षेत्र के वन जल विज्ञान संतुलन को संरक्षित करने, मृदा अपरदन को रोकने और स्थानीय समुदायों की आजीविका को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

वन जलविज्ञान में जलागम प्रबंधन के प्रमुख पहलू

1. मृदा और जल संरक्षण:

- मृदा अपरदन को रोकने और पानी के प्रवाह को बढ़ाने के लिए कंटूर ट्रेंचिंग, चेक डैम और वनीकरण जैसे उपायों को लागू करना।
- जल निकायों की अखंडता बनाए रखने के लिए पुनर्भरण क्षेत्रों का संरक्षण और पुनर्स्थापन।

2. वनावरण प्रबंधन:

- वन आवरण को बनाए रखने के लिए स्थायी वानिकी प्रथाओं को बढ़ावा देना, जो जल चक्र को विनियमित करने के लिए आवश्यक है।
- वनों की कटाई को रोकना और जलागम स्थिति को बढ़ाने के लिए वनीकरण और वनीकरण के प्रयासों को बढ़ावा देना।

3. सामुदायिक निवेश:

- जल संसाधनों के सतत उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए जलागम प्रबंधन प्रथाओं में स्थानीय समुदायों को शामिल करना।
- वन संरक्षण और सतत जल उपयोग के महत्व के बारे में लोगों को जागरूक करना।

4. जैव विविधता संरक्षणः

- क्षेत्र की समृद्ध जैव विविधता को संरक्षित करना, जो पारिस्थितिक संतुलन और हाइड्रोलॉजिकल कार्यों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- महत्वपूर्ण आवासों की सुरक्षा के लिए संरक्षित क्षेत्रों और जैव विविधता हॉटस्पॉट स्थापित करना।

5. एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन (आईडब्ल्यूआरएम):

- वनों, जल निकायों और मानव गतिविधियों के बीच अन्योन्याश्रयता को ध्यान में रखते हुए, जल संसाधनों के प्रबंधन के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना।
- विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वित प्रयासों का समर्थन करने वाली नीतियों और रूपरेखाओं को लागू करना।

जलागम प्रबंधन दृष्टिकोण

6. चुनौतियांः

- **वनों की कटाई और भूमि क्षरणः** कृषि, लॉगिंग और विकास परियोजनाओं के लिए तेजी से वनों की कटाई से मिट्टी का कटाव होता है और पानी की प्रतिधारण क्षमता कम हो जाती है।
- **जलवायु परिवर्तनः** बदलते वर्षा चक्र और चरम मौसमी घटनाएं जल विज्ञान चक्र को प्रभावित करती हैं, जिससे पानी की उपलब्धता और गुणवत्ता प्रभावित होती है।
- **जनसंख्या दबावः** बढ़ती जनसंख्या और विकास के दबाव से जल संसाधनों का अति–दोहन और वन पारितंत्र का क्षरण होता है।

उपसंहार

पूर्वोत्तर भारत में जल सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता और समुदायों की भलाई सुनिश्चित करने के लिए वन जल विज्ञान में प्रभावी जलागम प्रबंधन आवश्यक है। इसके लिए स्थायी प्रथाओं और नीतियों को लागू करने के लिए सरकारी एजेंसियों, स्थानीय समुदायों और गैर–सरकारी संगठनों को शामिल करते हुए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। वन पारितंत्र को संरक्षित करके और जल संसाधनों का बुद्धिमानी से प्रबंधन करके, पूर्वोत्तर भारत अपनी विविध वनस्पतियों, जीवों और मानव आबादी को समृद्धि के पथ पर अग्रसर रख सकता है।

बाँस : एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधन

श्री सौरभ दुबे, श्री अविरल असैया, श्री दर्शन के.
भा.वा.अ.शि.प.- उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

स्वस्थ बॉस भिर्रा

यह बढ़त लेने के लिये अपने भूमिगत प्रकंदों पर निर्भर करता है। ये प्रकंद पौधे का आंतरिक भाग है, जो इसकी तना (कल्म) को जमीन से ऊपर की ओर बढ़ने में मदद करते हैं। प्रायः इसका तना खोखला तथा पर्वसन्धि युक्त होता है। तने के निचले भाग से अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं। तनों (कल्मों) का समूह या बाँस का सम्पूर्ण पौधा भिर्रा कहलाता हैं। तने को परिपक्वता के आधार पर करला, महेला व पकिया कहाँ हैं। इसमें पुष्पन, प्रजातियों के अनुसार अलग – अलग हो सकता है। कुछ प्रजातियों में पुष्पन 40 से 50 वर्ष के अंतराल पर भी होता है तथा पुष्पन के बाद इसका सम्पूर्ण पौधा सूख जाता हैं। बाँस एक ऐसा पौधा है, जो हमारे उपयोग के साथ ही साथ पर्यावरण के लिये भी बहुत महत्तवपूर्ण हैं। यह वातावरण से वृक्षों के मुकाबले अधिक कार्बन को अवशोषित करता है तथा अधिक मात्रा में ऑक्सीजन का उत्सर्जन करता है। इसकी जड़ व प्रकंद संरचना मिट्टी के कटाव को रोकने में बहुत ही प्रभावी तरीके से काम करती हैं। प्राकृतिक नालों के किनारे व पहाड़ियों की ढ़लानों पर इसका रोपण मृदा क्षरण को रोकने में बहुत मदद करता हैं।

परिचय

ग्रामिनीई परिवार से संबंधित, बाँस एक काष्ठीय घास है, जो कई प्रकार की मृदा संरचनाओं में विकास कर सकता है, साथ ही साथ विभिन्न वातावरणीय परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है। इसकी ज्यादातर प्रजातियाँ उष्णकटिबंधीय और गर्म समशीतोष्ण वनों की मूल निवासी हैं। बाँस की कुछ प्रजातियाँ, धरती पर सबसे तेजी से बढ़ने वाली वनस्पतियों में से एक होती हैं, जो 24 घंटों में लगभग एक मीटर तक बढ़ सकती है।

वितरण

भारत में यह पूर्वोत्तर राज्यों से लेकर दक्षिण भारत के उष्णकटिबंधीय नम पर्णपाती वनों, पश्चिमी घाट, अण्डमान

– नीकोबार द्वीप समूहों, मध्य भारत के उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वनों, छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर वन अंचल सहित उत्तर तथा पश्चिम भारतीय राज्यों आदि में बाँस की विभिन्न प्रजातियाँ प्राकृतिक तौर पर मिलती है। भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित 2021 की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में इसकी लगभग 136 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमें 125 स्थानीय और 11 विदेशी प्रजातियाँ हैं। कश्मीर के अलावा लगभग सम्पूर्ण भारत में बाँस प्राकृतिक रूप से मिलता है। देश में पश्चिम बंगाल व पूर्वोत्तर राज्य बाँस संसाधन से सर्वाधिक सम्पन्न है। यहाँ *डेन्ड्रोकेलेमस हैमिल्टन* तथा *बैम्बुसा टुल्डा* व्यापारिक रूप से प्रमुख बाँस के साथ कई प्रजातियों के बाँस मिलते हैं। देश के अन्य भागों जैसे मध्य भारत के शुष्क पर्णपाती वनों में *डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस* तथा नम पर्णपाती वनों में *बैंबुसा बैम्बोस* प्रजाति के बाँस मुख्य रूप से पाए जाते हैं।

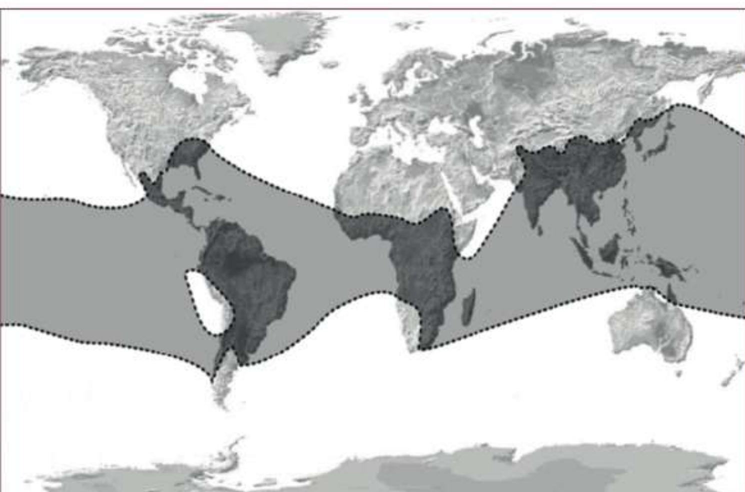

विश्व का बांस वितरण क्षेत्र

विश्व के परिदृश्य में, चीन में बाँस की सर्वाधिक प्रजातियाँ मिलती हैं। एशिया– प्रशांत क्षेत्र के देशों तथा द्वीप समूहों, दक्षिणी तथा पूर्वी एशिया के ज्यादातर भागों में बाँस की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। ऑस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिकी के अल्प भागों, मध्य तथा दक्षिण अमेरिकी उष्णकटिबंधीय वनों तथा वर्षावनों और अफ्रीका महाद्वीप में मोजाम्बिक और मेडागास्कर आदि देशो में बाँस की कुछ प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

बाँस का आर्थिक महत्त्व

भारतीय वन सर्वेक्षण – 2021 की रिपोर्ट के अनुसार देश के लगभग 20 लाख लोग बाँस की कटाई, परिवहन तथा उससे बनने वाले हस्तशिल्प उत्पादों से अपनी जीविका चलाते हैं। प्राचीन समय से ही भारत में शिल्पकारों द्वारा बाँस से दैनिक जरुरतों के सामान का निर्माण किया जा रहा हैं। प्रमुख रुप से टोकरी, अनाज साफ करने वाले सूप, झाड़ू, हाथ से चलाने वाले पंखें, चटाईयाँ व मछली पकड़ने वाले जाल आदि बाँस से बनाये जाते रहे हैं। भारत के अलग– अलग राज्यों में स्थानीय स्तर पर बाँस आधारित शिल्प विकसित कर लिये हैं, जैसे बाँस से बने फर्नीचर तथा सजावटी सामान आदि, जिसकी बाजार में बहुत माँग हैं।

बांस से निर्मित टोकरियां

भारतीय वन अधिनियम, 1927 (आईएफए, 1927) के प्रावधानों के अन्तर्गत बाँस को वृक्ष के रुप में परिभाषित किया गया था, जिससे उसे निजी भूमि पर लगाने के बाद कटाई तथा ढुलाई आदि में सरकारी नियमों का पालन करना पड़ता था। उक्त कारणों से बाँस को निजी भूमि पर लगाने से कृषक संकोच करते थे, परंतु भारत सरकार द्वारा भारतीय वन (संशोधन) अध्यादेश, 2017 के अनुसार गैर वन क्षेत्रों में लगायी गयी बाँस की प्रजातियों को वृक्ष की श्रेणी से हटा दिया गया, जिससे इसे वन से बाहर निजी भूमि में लगाने तथा परिपक्वता के बाद कटाई व ढुलाई करने पर किसी भी प्रकार की सरकारी पाबंदी नहीं

हैं। उक्त आदेश से कृषक अपने खेतों में बाँस का रोपण करने के लिये प्रोत्साहित हो रहे हैं तथा बाँस का बाजार में क्रय–विक्रय भी आसान हुआ है। भारत सरकार द्वारा बाँस के रोपण द्वारा बाँस क्षेत्र को बढ़ाना, उन्नत किस्मों से बाँस सम्बंधित कला कौशल व पैदावार बढ़ाने, बाँस द्वारा रोजगार बढ़ाने और हितग्राहियों को आर्थिक लाभ पहुँचाने जैसे विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ती के लिये राष्ट्रीय बाँस मिशन की स्थापना की गई है।

बाँस की परिपक्व कल्म

बाँस की परिपक्वता अवधि सामान्य तौर पर 5 वर्ष की होती है। अन्य वृक्ष प्रजातियों की तुलना में इसकी कम परिपक्वता अवधि इसे बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण के लिये उपयुक्त बनाती हैं। शीघ्र बढ़त लेने, कम समयावधि में तैयार होने तथा उचित बाजार मूल्य के कारण यह कृषको द्वारा ज्यादा पसंद की जाने वाली प्रजातियों में से एक हैं। भवन निर्माण में बाँस अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। बड़े पैमाने पर इसका उपयोग सेन्ट्रिंग के रुप में प्रयुक्त किया जा रहा हैं, क्योकि जहाँ एक ओर जंगल कम होने तथा आपूर्ती के हिसाब से वृक्षारोपण की कमी के कारण सागौन व अन्य मजबूत लकड़ियों की बल्ली की उपलब्धता घटी हैं तथा अन्य विकल्प जैसे लोहे के पोल जो कि लागत में भी अधिक होते हैं तथा इनका वजन भी बहुत अधिक होता हैं, इस कारण इनका उपयोग नहीं किया जा सकता, वही दूसरी ओर बाँस उपयोग के लिये बहुत अधिक उपयुक्त हैं, क्योंकि यह लकड़ी की बल्ली की तरह मजबूत होने के साथ ही बजन में हल्का तथा कीमत में भी कम होता है, इसलिये इसका उपयोग आज – कल भवन निर्माण में बड़े पैमाने पर किया जा रहा हैं। बाँस से बहुत अच्छी किस्म का कागज भी तैयार किया जाता हैं। इससे प्राप्त लुगदी पतले फाइबर के कारण कागज निर्माण में प्रयुक्त की जाती हैं। भारत दुनिया के उन देशों में से एक हैं, जो कागज बनाने के लिये बाँस लुगदी का सर्वाधिक उत्पादन व प्रयोग करते हैं। भारत के अलावा बांग्लादेश, चीन तथा थाईलैण्ड आदि देश भी कागज निर्माण में बाँस लुगदी का उपयोग बड़े पैमाने पर कर रहे हैं। फर्नीचर निर्माण में बाँस का प्रयोग भी किया जाने लगा हैं। यह प्रकाष्ठ की तुलना में सस्ता विकल्प प्रदान करता है। देश के बाँस करीगर अपनी रचना कौशल से सोफा, टेबल, शू–रेक व लेम्प आदि सामग्रियों तथा अनेक प्रकार की बाँस की ज्वेलरी का भी निर्माण कर रहे हैं, जिसे देश ही नहीं वरन् विदेशों में भी पसंद किया जा रहा हैं। बाँस से बनी फर्श का भी चलन बड़े शहरों में बढ़ता जा रहा हैं।

सामाजिक व सांस्कृतिक महत्त्व

देश के उत्तर पूर्वी राज्यों में बाँस वहाँ के निवासियों के जीवन का अहम हिस्सा हैं तथा यह परम्परा व जीवनशैली का महत्तवपूर्ण अंग हैं। भारतीय वन सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित 2017 की रिपोर्ट के अनुसार, पश्चिम बंगाल सहित उत्तर पूर्वी राज्यों में बाँस की लगभग 50% प्रजातियाँ पायी जाती हैं। यहाँ अनेक प्रकार से इसका प्रयोग जैसे – घर बनाने, खाना पकाने के बरतनों के तौर पर तथा भोजन के रुप में विविध तरीके से किया जाता हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में ग्रामीण चरवाहे धूप से बचने के लिये बाँस से टोपी बनाते है, जिसे और अधिक आकर्षक बनाने के लिये उसमें जरी आदि से सजावट करते हैं।

वही मध्य भारत में पशुओं को खेतों आदि में जाने से रोकने के लिए बाँस से ही सुरक्षा घेरा जिसे स्थानीय भाषा में बाड़ा

बांस की कलात्मक टोपी पहने चरवाहा, कवर्धा, छत्तीसगढ़

कहते हैं, बनाई जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में घरों की छत के लिये भी बाँस एक प्रमुख घटक हैं। पुराने समय में कहीं–कहीं सूखा पड़ने पर इसके बीजों को भोजन के रुप में इस्तेमाल किया जाता था। भारत की हिन्दु संस्कृति में बाँस बहुत अहम हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक इसका प्रयोग किसी न किसी रुप में किया जाता हैं। जन्म एवं विवाह समारोह जैसे कार्यक्रमों में इससे बनी कुछ वस्तुओं जैसे अनाज साफ करने का सूप, टोकरियाँ आदि का प्रयोग किया जाता हैं। उत्तर भारत में यह मान्यता है, कि बाँस की लकडी को जलाना अशुभ होता हैं। भारत सहित अनेक एशियाई देशों विशेषकर चीन, जापान व कोरिया आदि देशों की कला, संस्कृति एवं जीवनशैली में बाँस का बहुत अधिक महत्त्व हैं। चीन अपनी लेखन कला जिसे केलीग्राफी कहते हैं, के लिये भी जाना जाता हैं, और केलीग्राफी के लिये वहाँ बाँस से बने ब्रश का इस्तेमाल किया जाता है। बाँस वहाँ भोजन का प्रमुख अंग है। इसके नये कोमल तने विभिन्न प्रकार से खाये जाते है। बाजारों में मिलने वाला चीनी बाँस (लकी बेम्बू) घरो के अंदर सजावट के तौर पर रखते हैं और इसे चीनी वास्तुशास्त्र के अनुसार नकारात्मक प्रभाव को हटाने में प्रभावी माना जाता हैं। बाँस न केवल अपने उपयोग के लिये जाना जाता है, वरन् इसकी अनेक प्रजातियाँ देखने में बहुत ही आकर्षक लगती हैं, इसी कारण इन्हें उद्यान, घरों के बागीचों आदि की सजावट के लिये विशेष तौर पर जापान में बहुत इस्तेमाल किया जाता हैं।

भूमि चम्पा अथवा श्वेत हल्दी (*केम्फेरिया रोटुंडा लिन.*): एक संक्षिप्त परिचय

श्री अंकुर ज्योति सैकिया, श्री प्रदीप कुमार हजारिका, श्रीमती इल्लोरा दत्त बोरा
भा.वा.अ.शि.प.- वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

भूमि चम्पा अथवा श्वेत हल्दी को वानस्पतिक नामकरण की संदर्भ में *केम्फेरिया रोटुंडा* लिन. के नाम से जाना जाता हैं। यह जिंजीबरेसी– अदरक पादप कुल के अंतर्गत वर्गीकृत *केम्फेरिया* एल. वर्ग के पौधों की एक प्रजाति है। यह चीन, भारत और दक्षिण पूर्व एशिया का मूल पादप है। केम्फेरिया–इस वर्ग का नाम प्रकृतिवादी यात्री एंगेलबर्ट कैम्फर के नाम पर रखा गया है, जो 1689–1693 तक जापान और पूर्वी एशिया में रहे और वहां वितरित पौधों का विस्तृत विवरण लिखने वाले पहले यूरोपीय लोगों में से एक थे। इस वर्ग में लगभग 70 प्रजातियाँ शामिल हैं, जिनमें से लगभग दो–तिहाई एशिया में और शेष अफ्रीका में पाई जाती हैं (काम, 1980)।

यह कंदीय प्रकंद वाली एक सुगंधित जड़ी–बूटी है जो पूरे भारत में वितरित है। पादप–रासायनिक दृष्टिकोण से इस पौधे में फ्लेवोनोइड्स, क्रोटेपॉक्साइड, चल्कोन्स, क्वेरसेटिन, फ्लेवोनोल्स, β–सिटोस्टेरॉल, स्टिग्मास्टेरॉल, सिरिंजिक एसिड, प्रोटोकैटेचिक एसिड और कुछ हाइड्रोकार्बन शामिल होने का तथ्य सामने आया है। हालिया साहित्य समीक्षा से स्पष्ट है कि पौधे में फ्लेवोनोइड की प्रचुर उपस्थिति एंटी–ऑक्सीडेंट तंत्र में प्रमुख भूमिका निभाती है।

भूमि चम्पा एक बारहमासी जड़ी बूटी है जो उष्णकटिबंधीय एशिया में व्यापक रूप से वितरित है। कोमल भूमि चम्पा की पत्तियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है, तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा में प्रकंदों का उपयोग पेट दर्द, मतली और अपच को ठीक करने के लिए किया जाता है। *के. रोटुंडा* के प्रकंद अर्क में बेंजोएट, एन–पेंटाडेकेन, कैम्फीन, 2'–4'6'–ट्राइमेथॉक्सी–चाल्कोन और (+)–क्रोटेपॉक्साइड भी पाए गए। इस प्रजाति का उपयोग, *केम्फेरिया एलिगेंस (वॉल.)* बेकर और *केम्फेरिया पुल्ख्रा* रिडल की भाँति सजावटी पौधों के रूप में भी किया जाता है। अपने आकर्षक पत्तों के पैटर्न और फूलों के साथ, व्हाइट टर्मरिक को सजावटी अदरक के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

विभिन्न जैविक गतिविधियों वाले कैम्फेरिया वर्ग के पौधों पर हाल के वर्षों में काफी शोध हुआ है। इस पौधे के अर्क और प्राकृतिक यौगिकों में एंटीऑक्सीडेंट और कैंसर–रोधी गुणों के साथ–साथ एनाल्जेसिक, सूजन–रोधी और तपेदिक–रोधी गुणों सहित जैव सक्रियता की एक विस्तृत श्रृंखला देखने को मिलती है। श्वेत हल्दी के प्रकंद में लेक्टिन होता है, जो एक शक्तिशाली कैंसर रोधी दवा है। पिछले शोध के अनुसार, यह जलोदर कार्सिनोमा और कोलन कैंसर को बाधित करता है। *कैम्पफेरोल*, एक फ्लेवोनोइड जो भूमि चम्पा में प्रचुर मात्रा में होता है, उपास्थि के अधरू पतन को रोकता है और *रिउमटोइड गठिया* (आमवाती गठिया) के क्रिया को धीमा कर देता है।

दवाओं, सौंदर्य प्रसाधनों, औषधीय और पारंपरिक दवाओं के उत्पादन में इसके कई उपयोगों के कारण, वर्ग केम्फेरिया की कच्चे माल के रूप में अंधाधुंध कटाई की जा रही है। इस प्राकृतिक संसाधन की कमी के कारण, उन्हें अब अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। उष्णकटिबंधीय एशिया में सबसे महत्वपूर्ण औषधीय पौधों में से एक होने के बावजूद, श्वेत हल्दी के लिए संरक्षण के तरीके अच्छी तरह से तैयार नहीं किए गए हैं। इसलिए,

स्थायी उपयोग के लिए उनके संरक्षण की रणनीति बनाना बहुत महत्वपूर्ण है । पारंपरिक खेती के तरीकों में उपज कम है जिसमें भूमि चम्पा को प्रकंदों के माध्यम से वानस्पतिक प्रसार शामिल है। इसलिए, इस प्रजाति के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए लागत प्रभावी समाधान की आवश्यकता है।

भूमि चम्पा अथवा श्वेत हल्दी (*केम्फेरिया रोटुंडा*)
(क) पुष्पक्रम सहित एक पौधा. (ख) प्रकंद सहित एकल पुष्प

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,
देहरादून, उत्तराखण्ड।

मोरिंगा कोंकनेंसिस के विभिन्न बीज स्रोत से तैयार पौध में ऐश वीवल कीट के विरुद्ध प्रबंधन

श्रीमती देशा मीणा, कु. दिव्या गुर्जर, श्री सुरेश कुमार मीणा, श्री गणपत देवड़ा
भा.वा.अ.शि.प.-शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय:

मोरिंगा कोंकनेंसिस एक दुर्लभ व आर्थिक रुप से महत्वपूर्ण वृक्ष है जो मोरिंगेसी कुल से संबंधित है। यह दुनिया के कई भागों जैसे पाकिस्तान, एशिया माइनर, अफ्रीका, अरब और राजस्थान में बाड़मेर, जोधपुर, जालौर, जैसलमेर, झालावाड़, पाली आदि जिलों में पाया जाता है। इस वृक्ष के विभिन्न भागों का उपयोग औषधीय गुणों और पारंपरिक चिकित्सा जैसे बुखार, सिरदर्द और पाचन विकार सहित विभिन्न प्रकार की बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है। इसे एक सजावटी पौधें एवं भोजन और पेय पदार्थों का स्वाद बढ़ाने के उपयोग में भी लिया जाता है।

वर्गीकरण:

मोरिंगा कोंकनेंसिस मोरिंगसी परिवार का सदस्य है। टैक्सॉनॉमिक रूप से मोरिंगा को निम्नानुसर वर्गीकृत किया गया है।

किंगडम	प्लांटी
फाइलम	ट्रेकोफाइटा
वर्ग	मैगनोलियोप्सिडा
उपवर्ग	डिलेनिडे
ऑर्डर	कैपरलेस
कुल	मेरिंगसी
जीनस	मेरिंगा
प्रजाति	*मोरिंगा कोंकनेंसिस*

वानस्पतिक विवरण:

इस पेड़ की छाल मोटी व तना चमकदार होता है। इसकी पत्तियां 2–पिननेट व कभी कभी 3–पिननेट भी होती है। इसका प्राथमिक और माध्यमिक पुष्पक्रम 30–45 सेमी लम्बा व आधार से मोटा होता है। इसके पत्रक का आकार 9–45, 4.5–3.4, 4.2–2.5 सेमी, आधार से गोल, कभी कभी तिरछा पक्षीय होता है। पुष्पक्रम ढीला, पुष्पगुच्छ 40–50 सेमी लंबा (टोमेंटोज) होता है, पेडीकल्स 8–43 मिमी लम्बे, डिफ्लेक्स मोटे व आधार से जुड़े हुए होते हैं। इसके कैलिक्स 8 खंडाकार व खंड गोल, सफेद और 8–42 मिमी होते हैं। कोरोला का रंग सफेद और आधार से लाल होता है, पुष्प–केसर की संख्या 5 और फिलामेंट रोएँदार होते है। फलियाँ 30–45 सेमी लम्बी, 3 कोणीय, लम्बे नुकीले, वाल्व कठोर, 10 से 18 बीज प्रति फली होते है। इसके बीच 1.5 से 2 सेमी लम्बे, त्रिकोणीय, पतली हायलाइन के साथ व सफेद और हल्के रंग के होते हैं।

मोरिंगा कोंकनेंसिस के वृक्ष

मेरिंगा कोंकनेंसिस के फूल

मेरिंगा कोंकनेंसिस के संरक्षण प्रयास:

संस्थान में चल रहे राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (एन. एम. पी. बी.), नई दिल्ली प्रोजेक्ट के अंतर्गत राजस्थान के जोधपुर और बाड़मेर जिलों में *मोरिंगा कॉन्कनेंसिस* के पेड़ों का सर्वेक्षण किया गया। मार्च– अप्रैल 2024 माह में चिह्नित वृक्षों से बीज एकत्र किए गये। उसके बाद उन बीजों को बालु, खाद, मृदा के 30: 40: 30 अनुपात में रूटट्रेनर में लगाए गए और उसका अंकुरण प्रतिशत दर्ज किया गया। लगभग 25–30 दिनों के बाद पौधों की सभी पत्तियों में ऐश वीवल के संक्रमण को देखा गया।

मेरिंगा कोंकनेंसिस के बीज और फलियाँ

स्वस्थ्य पौधा एवं ऐश वीवल से संक्रमित पौधा

ऐश वीवल से संक्रमित पौधा

ऐश वीवल का वर्णन:

माइलोसेरस प्रजाति ऐश वीवल का वैज्ञानिक नाम है। ऐश वीवल की प्रजातियां भारत, श्रीलंका और म्यांमार में पाई जाती हैं। इसकी लंबाई लगभग 6 से 7 मिमी होती है, यह लौह भूरे रंग का होता है। इसके एलीट्रा और ब्लैक मोटलिंग पर एक सफेद धब्बा होता है और प्रोनोटम में, एक केंद्रीय पीली ग्रे पट्टी और पार्श्व रूप से एक छोटी बेसल पट्टी होती है। अंडे अंडाकार होते हैं, और हल्के पीले रंग के होते हैं, ग्रब छोटा, एपोडस और घुमावदार और हल्के सफेद रंग का होता है। ग्रब लंबाई में लगभग 7 से 8 मिमी का होता है। इसके मैंडिबल्स अच्छी तरह से विकसित और मोटे दांतेदार होते हैं। उदर खंडों की तुलना में थोरेसिक खंड अच्छी तरह से विकसित होते हैं। प्यूपा भूरे रंग का और लंबाई में 6 से 7 मिमी का होता है।

ऐश वीवल का वयस्क और अंडा

लक्षण:

इसके वयस्क पत्तियों के किनारों को नोचते है और लार्वा जड़ों को खाते हैं जिससे पौधा मुरझा कर मर जाता हैं। संक्रमण गम्भीर होने पर पौधों की वृद्धि प्रतिबंधित हो जाती है और पौधा जड़ों से कमजोर होने लगता है।

नियंत्रण:

नर्सरी में तैयार किए गए पौधों में से प्रभावित पौधों पर वानस्पतिक नियंत्रण किया गया जिसमें नीम तेल व पानी के (1%)मिश्रण का छिड़काव किया गया जिससे प्रभावित पौधों में लक्षणों की कमी पायी गयी।

ऐश वीवल का वानस्पतिक नियंत्रण

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम: खतरे, प्रसार व संरक्षण

डॉ. विनोद कुमार
भा.वा.अ.शि.प.-हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

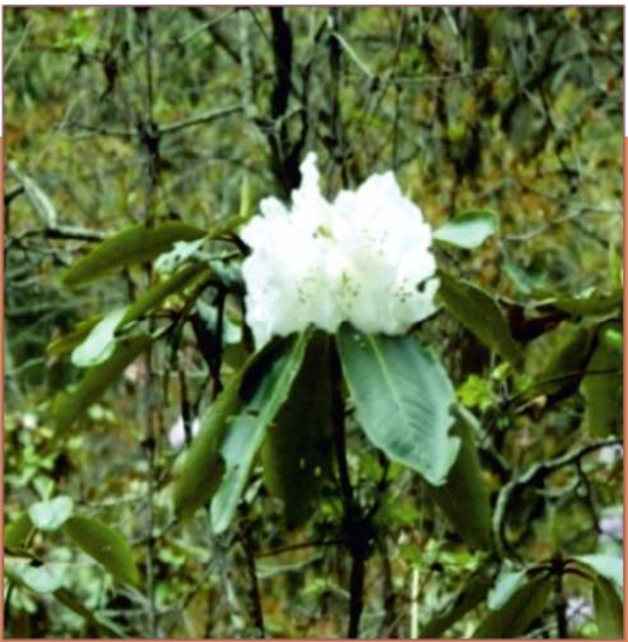

परिचय

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम, एरिकसी परिवार से संबंधित फूल पौधे की एक प्रजाति है, जिसे आमतौर पर "घंटी के आकार" के *रोडोडेंड्रोन* के रूप में जाना जाता है। इस सदाबहार झाड़ी की विशेषता इसके आकर्षक "घंटी के आकार के फूल" हैं, जो गुलाबी, बैंगनी और कभी–कभी सफेद रंगों में खिलते हैं। पौधे की पत्तियाँ गहरे हरे और चमकदार होती हैं, जिनमें अमृदु की बनावट होती है, जो इसके रंगीन फूलों के साथ एक आकर्षक विरोधाभास प्रदान करती है। *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* को इसके सजावटी गुणों के लिए बागवानी में अत्यधिक महत्व दिया जाता है और अक्सर दुनिया भर के बगीचों और परिदृश्यों में इसकी खेती की जाती है। अपनी सौंदर्यता के अतिरिक्त, यह प्रजाति उन क्षेत्रों में सांस्कृतिक महत्व रखती है जहां ये विभिन्न पारंपरिक लोक कथाओं, अनुष्ठानों और औषधीय प्रथाओं में विशेष महत्व रखती है। पारिस्थितिक रूप से, *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* अपने मूल पारिस्थितिक तंत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो पक्षियों, कीड़ों और छोटे स्तनधारियों सहित विभिन्न वन्यजीव प्रजातियों के लिए भोजन और आवास प्रदान करता है। यह पर्वतीय क्षेत्रों में मृदा संरक्षण और कटाव नियंत्रण के लिए भी महत्वपूर्ण है। हालाँकि, कई अन्य *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों की तरह, *आर. कैंपानुलैटम* में जहरीले यौगिक भी होते हैं, विशेष रूप से इसकी पत्तियों में, जो मनुष्यों या जानवरों द्वारा निगले जाने पर हानिकारक हो सकते हैं। कुल मिलाकर, *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* एक मनोरम वनस्पति प्रजाति है, जो अपनी सुंदरता, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व के लिए प्रशंसित है, साथ ही संरक्षण प्रयासों और खेती प्रथाओं के लिए चुनौतियां और ध्यान भी आकर्षित करता है।

वितरण

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम, मूलतः हिमालय क्षेत्र की मूल निवासी है और विशेष रूप से भारत, नेपाल, भूटान, चीन और तिब्बत (हिमालय से दक्षिणी तिब्बत) में पायी जाती है। यह आमतौर पर अल्पाइन और उप–अल्पाइन जंगलों में पायी जाती है, और समुद्र तल से 2,400 से 4,000 मीटर की ऊंचाई तक स्थित होती है। यह प्रजाति मूल रूप से नेपाल में पायी जाती है, जहां यह देश भर के पहाड़ी क्षेत्रों में विस्तारित है। यह हिमालय के ऊंचाई वाले जंगलों में, विशेषकर नम, ठंडी जलवायु वाले क्षेत्रों में पनपती हैं। ये प्रजाति भूटान के पहाड़ी क्षेत्रों में मौजूद होती है, जहां यह देश के जंगलों की समृद्ध जैव विविधता में योगदान देती है। तिब्बत, जो चीन का हिस्सा है, वहाँ ये पूर्वी हिमालय और अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती है। *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* उत्तरी म्यांमार खासकर हिमालय की सीमा से

लगे क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* का वितरण पश्चिमी से पूर्वी हिमालय तक फैला हुआ है, जिसमें विविध प्रकार के आवास और ऊंचाई वाले क्षेत्र शामिल हैं। ये मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और सिक्किम राज्यों में पाया जाता है, जहां यह हिमालय की तलहटी की ठंडी, समशीतोष्ण जलवायु में पनपती है क्योंकि ये क्षेत्र इस प्रजाति के विकास के लिए उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं, जिनमें अच्छी जल निकासी वाली अम्लीय मिट्टी और पर्याप्त नमी शामिल है। हिमाचल प्रदेश में, किन्नौर, लाहौल–स्पीति और कुल्लू घाटी के कुछ हिस्से *आर कैम्पानुलटम* की व्यापक आबादी के लिए जाने जाते हैं। अपने प्राकृतिक आवास के अलावा, *आर. कैंपानुलैटम* की खेती इसके सजावटी मूल्य के लिए पूरे भारत में वनस्पति उद्यानों, पार्कों और निजी परिदृश्यों में भी की जाती है। कुल मिलाकर, *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* का वितरण उपयुक्त जलवायु परिस्थितियों वाले उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों के लिए इसकी प्राथमिकता को दर्शाता है, जो हिमालयी पारितंत्र की समृद्ध जैव विविधता और पुष्प विविधता में योगदान देता है। हालाँकि, प्रकृतिक वास की हानि, जलवायु परिवर्तन और आक्रामक प्रजातियाँ जैसे कारक इस प्रजाति और इसके प्राकृतिक आवासों के संरक्षण के लिए चुनौतियाँ पैदा करते हैं। इस प्रतिष्ठित हिमालयी पौधे से जुड़ी पारिस्थितिक अखंडता और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* आबादी की सुरक्षा और स्थायी प्रबंधन के प्रयास आवश्यक हैं।

खतरें

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम को अन्य पौधों की तरह, कई खतरों का सामना करना पड़ता है जो इसकी आबादी और प्राकृतिक वास को प्रभावित करते हैं। कृषि, शहरीकरण व बुनियादी ढांचे के विकास के लिए प्राकृतिक आवासों के रूपांतरण से इसके वासों का नुकसान और विखंडन हुआ है। वनों की कटाई और भूमि–उपयोग परिवर्तन से पारिस्थितिक संतुलन बाधित होता है जिसके चलते इस प्रजाति के लिए उपयुक्त आवास कम हुए हैं। जलवायु परिवर्तन से तापमान और वर्षा चक्र में परिवर्तन होने से *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* आबादी के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा हुई हैं। जलवायु में बदलाव इसके फूलों के समय को प्रभावित करता है, जिसके कारण परागण की गतिशीलता बाधित होती है और इस प्रजाति के समग्र वितरण और बहुतायत को प्रभावित करती हैं। तीसरा मुख्य कारण आक्रामक प्रजातियाँ हैं जिनके आने से स्वदेशी वनस्पति को मात देने, पारितंत्र की गतिशीलता में बदलाव और आवास की गुणवत्ता में गिरावट के कारण इस प्रजाति का अस्तित्व खतरे में है। आक्रामक प्रजातियाँ अपने साथ कीट और बीमारियाँ भी लाती हैं जो इसकी आबादी के स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। सजावटी उपयोग, औषधीय प्रयोजनों और ईंधन के लिए लकड़ी के संग्रह के कारण इस प्रजाति की निरंतर कटाई होने से आबादी कम हो रही है जिससे ये स्थानीयकृत विलुप्ति की ओर बढ़ रही है। कृषि अपवाह, औद्योगिक गतिविधियों और वाहन से निकले प्रदूषण से *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* के आवासों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। वायु और जल प्रदूषण मिट्टी की गुणवत्ता, पौधों के स्वास्थ्य और इसकी आबादी में प्रजनन सफलता को कम करते हैं। अत्यधिक सूखा, बाढ़ और तूफान, इसकी आबादी को सीधे नुकसान पहुंचाती हैं व इसके विकास और प्रजनन को बाधित करती हैं। इन खतरों से निपटने के लिए समन्वित संरक्षण प्रयासों की आवश्यकता है, जिसमें आवास पुनरूद्धार, संरक्षित क्षेत्र प्रबंधन, आक्रामक प्रजाति नियंत्रण, स्थायी भूमि–उपयोग प्रथाएं और जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन रणनीतियां शामिल हैं। *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* और इसके द्वारा समर्थित जैव विविधता के दीर्घकालिक अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए संरक्षण पहल में स्थानीय समुदायों, नीति निर्माताओं और हितधारकों को भी शामिल करना अनिवार्य है।

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम और जलवायु परिवर्तन

हिमालयी क्षेत्र की इस महत्वपूर्ण प्रजाति पर जलवायु परिवर्तन का गहरा प्रभाव है। जैसे–जैसे तापमान बढ़ता है और मौसम का मिजाज अधिक अप्रत्याशित होता है, *आर. कैंपानुलैटम* पर कई महत्वपूर्ण प्रभाव देखे जाते हैं:

1. परिवर्तित फीनोलोजीः

जलवायु परिवर्तन *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* में फूल आने जैसी प्रमुख जीवन चक्र घटनाओं के समय को प्रभावित करता है। गर्म तापमान फूल आने के समय को आगे या विलंबित करता है, जिससे *आर. कैंपानुलैटम* और इसके परागणकों के बीच समकालिकता बाधित हो सकती है, जिससे प्रजनन कम हो सकती है।

2. वितरण में बदलाव

तापमान और वर्षा के चक्र में बदलाव से इसके उपयुक्त आवास सीमा में बदलाव देखा गया है। जैसे–जैसे तापमान गर्म होता है इसका उपयुक्त वास अधिक ऊंचाई पर स्थानांतरित हो जाता है, जिससे *आर. कैम्पानुलैटम* की सीमा संकुचित होती है। इसके विपरीत, कम ऊंचाई पर, बढ़े हुए तापमान से नए आवास बनते हैं जो इसके लिए अनुपयुक्त हैं।

3. कीटों और रोगों के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धिः

जलवायु परिवर्तन *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* पर कीटों और रोगों के प्रसार और प्रभाव को बढ़ाता है। गर्म तापमान और परिवर्तित वर्षा चक्र कीटों और रोगजनकों के प्रसार के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करते हैं, जिससे इसकी आबादी में तनाव पैदा होता है व मृत्यु दर बढ़ती है।

4. बर्फ के आवरण में कमीः

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम ठंडी जलवायु के लिए अनुकूलित होता है और इन्सुलेशन व नमी के लिए सर्दियों के महीनों के दौरान बर्फ के आवरण पर निर्भर करता है। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन के कारण कई पर्वतीय क्षेत्रों में बर्फ का आवरण कम हो रहा है और बर्फ समय से पहले पिघल रही है, जिससे महत्वपूर्ण अवधियों के दौरान इसको अधिक तापमान में उतार–चढ़ाव व पानी के तनाव का सामना करना पड़ रहा है।

5. अनुवंशिक विविधता का नुकसानः

जलवायु परिवर्तन चयनात्मक दबावों में परिवर्तन और आबादी के बीच जीन प्रवाह के अवसरों को सीमित करके इसकी आबादी की आनुवंशिक विविधता को प्रभावित करता है। आनुवंशिक विविधता कम होने से प्रजातियों की बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल ढलने की क्षमता कम हो जाती है और विलुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है। *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को संबोधित करने के लिए व्यापक संरक्षण रणनीतियों की आवश्यकता है जो आवास संरक्षण, बहाली और सतत प्रबंधन पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने और जलवायु तन्यकता को बढ़ावा देने के माध्यम से जलवायु परिवर्तन को कम करने के प्रयास इसके और अन्य हिमालयी प्रजातियों के दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं।

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम का प्रसार

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम, के सफल पुनरूद्धार और विकास सुनिश्चित करने के लिए *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* का प्रसार विभिन्न नर्सरी तकनीकों के माध्यम से किया जाता है। सफल प्रसार और स्थापना सुनिश्चित करने से पूर्व कुछ बातों या आवश्यकताओं जैसे अम्लीय मिट्टी, पर्याप्त नमी और कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों का ध्यान रखना आवश्यक है। नीचे कुछ नर्सरी तकनीकें दी गई हैं जिनका उपयोग आमतौर पर इसके प्रसार के लिए किया जाता हैः

1. बीजों द्वारा प्रसारः

उपयुक्त मौसम के दौरान, आमतौर पर फूल आने के बाद, परिपक्व *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* पौधों से पके हुए बीज इकट्ठा करें। बीज साफ करें और कोई भी अवशेष या गूदा हटा दें। बीजों को अच्छी जल निकासी वाली, पीट काई या पाइन छाल जैसे कार्बनिक पदार्थ युक्त अम्लीय मिट्टी के मिश्रण में बोएं। मिट्टी को लगातार नम रखें और अंकुरण के लिए अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रदान करें। जब पौधों में कई वास्तविक पत्तियाँ विकसित हो जाएँ तो उन्हें अलग–अलग कंटेनरों में रोपें।

2. कलमों द्वारा प्रसारः

प्रसुप्त मौसम के दौरान स्वस्थ *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* पौधों से अर्ध–दृढ़ लकड़ी या दृढ़ लकड़ी की कटिंग लें। निचले हिस्से से किसी भी पत्ते को

हटाकर और एक गांठ के ठीक नीचे एक साफ कट बनाकर कटिंग तैयार करें। जड़ के विकास को बढ़ावा देने के लिए कटे हुए सिरों को रूटिंग हार्मोन में डुबोएं। कटिंग को पेलाईट, वर्मीक्युलाईट, या पीट काई और रेत के मिश्रण वाले रूटिंग माध्यम में रोपित करें। उच्च आर्द्रता बनाए रखें और जड़ निर्माण के लिए अप्रत्यक्ष प्रकाश की व्यवस्था करें। एक बार जड़ आने के बाद, कलमों को अलग–अलग कंटेनरों में प्रत्यारोपित करें और धीरे–धीरे उन्हें बाहरी परिस्थितियों के अनुकूल बनाएं।

3. लेयरिंग द्वारा प्रसारः

एक परिपक्व *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* पौधे की एक स्वस्थ, कम बढ़ने वाली शाखा का चयन करें। शाखा के नीचे एक छोटा सा चीरा लगाएं और कटे हुए क्षेत्र पर रूटिंग हार्मोन लगाएं। यू–आकार के पिन का उपयोग करके शाखा के कटे हिस्से को मिट्टी की सतह पर रोपित करें। कटे क्षेत्र को मिट्टी से ढक दें और इसे लगातार नम रखें। समय के साथ कटे स्थान पर जड़ें विकसित होंगी, और एक बार पर्याप्त रूप से जड़ें आने के बाद, परत वाले हिस्से को मूल पौधे से अलग करें और कंटेनर में प्रत्यारोपित करके नया पौधा पाएँ।

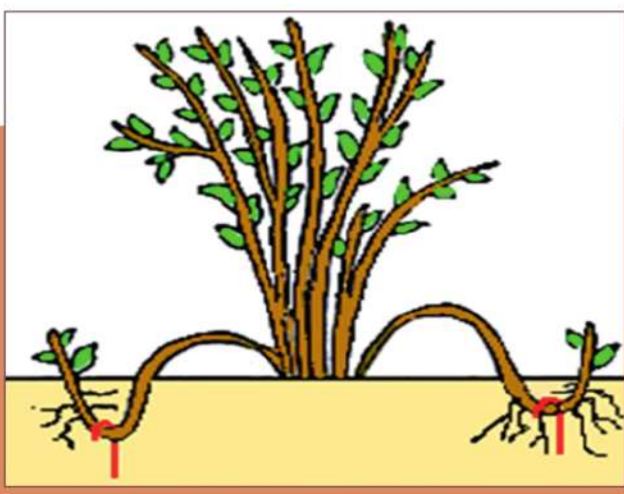

4. ग्राफ्टिंग द्वारा प्रसारः

ग्राफ्टिंग का उपयोग आमतौर पर *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* के प्रसार के लिए कम किया जाता है,

लेकिन इसे विशिष्ट किस्मों या संकरों के लिए किया जा सकता है। *रोडोडेंड्रोन* प्रजातियों या किस्मों से उपयुक्त रूटस्टॉक और स्कोन सामग्री का चयन करें। क्लीफ्ट ग्राफ्टिंग या व्हिप ग्राफ्टिंग जैसी उपयुक्त तकनीकों का उपयोग करके ग्राफ्टिंग प्रक्रिया निष्पादित करें। रूटस्टॉक के साथ स्कोन का उचित संरेखण और सुरक्षित जुड़ाव सुनिश्चित करें। सूखने से बचाने के लिए ग्राफ्ट यूनियन को ग्राफ्टिंग टेप या मोम से सुरक्षित रखें। ग्राफ्टिंग किए गए पौधे को तब तक इष्टतम वृद्धि की स्थिति प्रदान करें जब तक कि वह स्थापित न हो जाए और बढ़ना शुरू न कर दे।

इन नर्सरी तकनीकों को नियोजित करके, उत्पादक प्रभावी ढंग से *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* का प्रचार कर सकते हैं और भूनिर्माण, वनस्पति संग्रह और संरक्षण प्रयासों के लिए स्वस्थ पौधों का उत्पादन कर सकते हैं।

संरक्षण रणनीतियॉ

हिमालयी क्षेत्र की इस प्रजाति के संरक्षण के लिए वैश्विक और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। दुनिया और भारत में इस प्रजाति की सुरक्षा के संदर्भ में कुछ प्रमुख संरक्षण रणनीतियाँ निम्न रेखांकित हैं:

1. पर्यावास संरक्षण और पुनः स्थापनाः

रोडोडेंड्रन कैम्पेन्युलेटम के आवास को आवरित करने वाले संरक्षित क्षेत्रों व संरक्षण आरक्षित क्षेत्रों की

स्थापना, इसकी आबादी को संरक्षित करने के लिए अत्यावश्यक है। आवास क्षरण व विखंडन को रोकने के लिए इन संरक्षित क्षेत्रों को प्रभावी ढंग से प्रबंधित किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, आवास बहाली की पहल, जैसे कि पुनर्वनीकरण और कटाव नियंत्रण उपाय, ख़राब हुए इसके आवासों को बहाल करने में मदद करते हैं।

2. **अनुसंधान और निगरानी:**

रोडोडेंड्रन कैम्पानुलेटम की पारिस्थितिकी, जीवविज्ञान, और वितरण को बेहतर समझने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान इसके संरक्षण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। दीर्घकालिक निगरानी कार्यक्रम आबादी प्रवृत्तियों को ट्रैक, खतरों का आकलन और संरक्षण उपायों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन भी कर सकते हैं।

3. **आक्रामक प्रजाति प्रबंधन:**

संसाधनों के लिए इसके साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली आक्रामक पौधों की प्रजातियों को नियंत्रित और प्रबंधित करने के उपायों को लागू करना महत्वपूर्ण है। इसमें आक्रामक प्रजातियों को हटाना, आवास का पुनरुद्धार, और प्रजाति के आवासों में नई आक्रामक प्रजातियों के प्रवेश को रोकना शामिल है।

4. **जलवायु परिवर्तन अनुकूलन:**

जलवायु–प्रतिरोधी संरक्षण रणनीतियों का विकास व प्रजाति पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का पूर्वानुमान और समाधान करना आवश्यक है।

5. **सामुदायिक सहभागिता और हितधारक भागीदारी:**

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम आवासों के स्थायी प्रबंधन के लिए संरक्षण प्रयासों में स्थानीय समुदायों और अन्य हितधारकों को शामिल करना महत्वपूर्ण है। संरक्षण गतिविधियों में स्थानीय समुदायों को शामिल करना, स्थायी आजीविका विकल्पों को बढ़ावा देना और इसके महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना संरक्षण पहल के लिए अति महत्वपूर्ण है।

6. **कानूनी संरक्षण और नीतियां:**

रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम और इसके आवासों की रक्षा के लिए कानून बनाना व लागू करना आवश्यक है। सरकारों और नीति निर्माताओं को इसकी संरक्षण प्राथमिकताओं को राष्ट्रीय और क्षेत्रीय जैव विविधता संरक्षण योजनाओं में एकीकृत करना चाहिए और अंतरराष्ट्रीय संरक्षण समझौतों और पहलों में *आर. कैम्पानुलैटम* को शामिल करने की वकालत करनी चाहिए।

इन संरक्षण रणनीतियों को विश्व स्तर पर और भारत के भीतर लागू करके, हम *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* और इसके अद्वितीय हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र के दीर्घकालिक अस्तित्व और स्थिरता को सुनिश्चित करने की दिशा में काम कर सकते हैं।

निष्कर्ष

हिमालयी क्षेत्र की मूल प्रजाति *रोडोडेंड्रोन कैंपानुलैटम* के प्रभावी संरक्षण के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो विभिन्न खतरों और चुनौतियों का समाधान करे। आवास संरक्षण, पुनर्स्थापन, आक्रामक प्रजातियों के प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन अनुकूलन, सामुदायिक सहभागिता और विभिन्न नीति के माध्यम से हम इसकी आबादी और इसके नाजुक पारितंत्र की सुरक्षा की दिशा में काम कर सकते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान, स्थानीय ज्ञान और हितधारकों की भागीदारी को एकीकृत करके, हम समग्र संरक्षण कार्यनीतियाँ विकसित कर सकते हैं जो वैश्विक और क्षेत्रीय दोनों संदर्भों में *आर. कैंपानुलैटम* के प्रतिरोध क्षमता और दीर्घकालिक अस्तित्व को बढ़ावा देती हैं। अंततः, *आर कैंपानुलैटम* का संरक्षण न केवल जैव विविधता के संरक्षण के लिए बल्कि हिमालय क्षेत्र की पारिस्थितिक अखंडता और सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने के लिए अतिआवश्यक है।

श्योनाक (ओरोजाइलम इण्डिकम): एक महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष

श्री नीरज प्रजापति, श्रीमती निकिता राय, श्री पंकज कुमार
भा.वा.अ.शि.प.–उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

श्योनाक एक मध्यम – बड़े आकार का पर्णपाती वृक्ष है। यह भारत के उष्णकटिबंधीय जंगलों में 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। यह भारत में सामान्यतः टेटू, टायटू, श्योनाक, सोनपाठा इत्यादि क्षेत्रीय नामों से जाना जाता है। पौधे के विभिन्न भागों जैसे जड़ की छाल, तने की छाल और बीजों में प्रत्यूर्जतानाशक, रोगाणुरोधी, कवकरोधी, शोथरोधी और कैंसर रोधी, हिपैटोप्रोएक्टिव, प्रतिउपचायक, अल्सररोधी, गठियारोधी, और प्रतिरक्षी उद्दीपन इत्यादि गुण पाए जाने के कारण इसका उपयोग दवा के रूप में किया जाता है। यह प्रसिद्ध आयुर्वेदिक संयोजन दशमूलारिष्ट का महत्वपूर्ण भाग है। इस वृक्ष की पत्तियां, फूल, फल एवं अंकुर भाग खाने योग्य होते हैं। फलों से प्राप्त रंजक का उपयोग चरम शोधन और रंगाई के कार्यों में किया जाता है। वर्ष 2014–15 (भारत में औषधीय पौधेः उनकी मांग और आपूर्ति का आकलन– राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड) के अनुसार इसकी सालाना खपत 794.98 मीट्रिक टन थी, जिसका अधिकांश भाग (92.11%) बड़े एवं मध्यम औषधीय उद्योगों द्वारा एवं (7.88%) छोटे वलघु औषधीय इकाई द्वारा किया गया। ग्रामीण परिवारों द्वारा इसके 312.08 मीट्रिक टन कच्चे माल का उपभोग किया गया जिसमे वाणिज्यिक व्यापार भी सम्मिलित है। इसका अनुमानित वार्षिक वाणिज्यिक व्यापार लगभग 500–1000 मीट्रिक टन है। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड एवं अन्य संस्थाओं द्वारा इस पौधे की नर्सरी एवं कृषि तकनीक विकसित की गयी है, परन्तु आमतौर पर यह पेड़ कृषि पद्धति में नहीं पाए जाते है। विभिन्न औषधीय उद्योगों द्वारा कच्चे माल के मांग की आपूर्ति मुख्यतः प्राकृतिक भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई आबादी पर आश्रित है। सामान्यतः औषधीय निर्माण के लिए वृक्षों से उच्च गुणवत्ता के कच्चे माल की प्राप्ति का सतत विदोहन समय 10 वर्ष या उससे अधिक होने एवं कृषि पद्धति में अधिक चलन न होने के कारण इसके वैज्ञानिक और असतत विदोहन को बढ़ावा मिलता है, जिसके कारण प्राकृतिक वास में इस प्रजाति की संख्या एवं पुनः उत्पादन में काफी कमी हुई है। राजस्थान, केरल, महाराष्ट्र, एवं उड़ीसा में यह प्रजाति लुप्तप्राय एवं मध्यप्रदेश, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, अरुणाचलप्रदेश, नागालैंड, मेघालय, आँध्रप्रदेश, असम, और सिक्किम में संवेदनशील श्रेणी में सूचीबद्ध है।

महाराष्ट्र में चंद्रपुर, सतारा, सिंधुदुर्ग, यवतमाल, गढ़चिरोली, गोंदिया, एवं वर्धा वनविभागों में एथनोबॉटनी सर्वेक्षण के दौरान इसका स्वदेशी औषधीय पारंपरिक ज्ञान का प्रलेखन किया गया। वहां के रहवासी इसे मुख्यतः पीलिया, अस्थमा, गल–शोथ, स्वरयंत्र–प्रदाह, जठराग्नि, अतिसार, पेचिश, शिशु–संबंधी, पर्विल अरुणिका इत्यादि रोगों के उपचार हेतु उपयोग करते हैं।

चंद्रपुर वन विभाग के धाबा एवं कोठारी वन परिक्षेत्र में ग्रामीणों द्वारा इसके फूलों का उपयोग सब्जी एवं कच्चे फलियों का उपयोग अचार बनाकर किया जाता है एवं इस वृक्ष के जड़ या तने की छाल के विदोहन को अधिक प्राथमिकता नहीं दी जाती है। अधिकांश घरों में यह वृक्ष बाड़ी एवं पानी के स्त्रोतों के पास पाये गए एवं ऐसे वृक्ष जो निरंतर पानी एवं नमी वाले स्त्रोतों के नजदीक थे ग्रामीणों द्वारा उनमें वर्ष में दो बार पुष्पन का उल्लेखन किया गया। ग्रामीण मान्यता के अनुसार कच्ची फलियों, फूलों के अचार व सब्जी का सेवन उन्हें विभिन्न स्वास्थ्य सम्बंधित बीमारियों से बचाता है एवं इसे क्षेत्रीय बाजार में क्रय–विक्रय किया जाता है।

असतत विदोहन, जैवीय दबाव एवं अन्य कारणों से इस प्रजाति की उपलब्धता में कमी आयी है एवं इसके कारण

कच्चे माल में प्रतिस्थापन या मिलावट से उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आई है। पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध होने और प्रकृति में औषधीय जंगली प्रजातियों के विदोहन और पुनर्प्राप्ति के बीच संतुलन बनाने की अत्यंत आवश्यकता है। केवल प्राकृतिक स्त्रोत से कच्चे माल की आपूर्ति मांग को पूर्ण नहीं कर सकती हैं, इसलिए इसके प्राकृतिक भौगोलिक क्षेत्र में फैली हुई आबादी के संरक्षण, वैज्ञानिक एवं सतत विदोहन की विधियों के अनुपालन, प्राकृतिक क्षेत्रों में वृक्षारोपण एवं कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि पद्धति में सुनियोजित तरीके से अपनाने की आवश्यकता है। इसलिए, इस औषधीय वृक्ष के संरक्षण, कृषि और अनुसंधान एवं विकास में नए आयाम निर्वहन करने हेतु प्रयास करने चाहिए।

छायाचित्रः
(क) श्योनाक की फलियों का एक मूल्य वर्धित उत्पाद (ख) क्षेत्र सर्वेक्षण

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,
देहरादून, उत्तराखण्ड।

सैटिनवुड वृक्ष (क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया): सेमिलोपर (अचिया जनाटा) के खिलाफ पौधे के अर्क की आहाररोधी संपत्ति

डॉ. दीपा एम, श्री डी.एस.एस.प्रसाद, श्री एन. युवराज प्रवीण
भा.वा.अ.शि.प.- वन जैव विविधता संस्थान, हैदराबाद

Procuring Chloroxylon bark

Leaf and bark samples of *Chloroxylon swietenia*

सरांश:

वानस्पतिक पदार्थ न केवल कीटनाशकों के रूप में कार्य करते हैं, बल्कि आहाररोधी, अंडनिरोधक और अंडनाशक के रूप में भी कार्य करते हैं। एक परीक्षण कीट *अचिया जनाटा* के खिलाफ पौधे के अर्क की आहाररोधी संपत्ति, विभिन्न सांद्रता में की गई थी। प्रयोगों के दौरान कीट संवर्धन को प्रयोगशाला में वृद्धि कक्ष में 27 ± 2° C, 12: 12 L:D के तापमान और 70 ± 5% RH पर रखा गया। परीक्षण कीट के भक्षण व्यवहार के आधार पर पौधे के अर्क में आहाररोधी गतिविधि देखी गई। सांद्रता और नियंत्रण अवरोही क्रम में व्यवस्थित है। परीक्षण कीट के भोजन व्यवहार के आधार पर पौधे के अर्क में आहाररोधी गतिविधि देखी गई। सांद्रता और नियंत्रण अवरोही क्रम में व्यवस्थित है 1.0%> 0.8%> 0.6%> 0.4%> 0.2%> 0.1%। 1.0 प्रतिशत सांद्रता पर इन पत्तियों को खाने वाले कीटों के खिलाफ सबसे प्रभावी और शक्तिशाली आहाररोधी पाया गया। परीक्षण कीटों की आबादी को कम करने में सैटिनवुड पेड़ों की प्रभावकारिता का प्रयोगशाला में अध्ययन किया गया।

परिचय:

कीट फसल उत्पादन को सीमित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक हैं। कृत्रिम जैविक कीटनाशक कीट प्रबंधन के प्रमुख उपकरण के रूप में उभरे हैं। हालाँकि, कृत्रिम रसायनों के अंधाधुंध उपयोग के कारण, कीड़ों ने कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर ली है। द्वितीयक कीटों का फिर से उभरना, प्राकृतिक शत्रुओं की आबादी में कमी और भोजन, चारा और चारे में हानिकारक अवशेषों का पाया जाना कीटनाशकों के उपयोग के कुछ परिणाम हैं। इन चिंताओं के कारण वैकल्पिक कीट नियंत्रण प्रौद्योगिकियों में उछाल आया है, जिसके माध्यम से केवल जैविक मूल के अपेक्षाकृत पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित कीटनाशकों का विकास

किया जाना है। लगभग 2,50,000 में से 2,000 से अधिक पौधों की प्रजातियों में कीटनाशक गतिविधि पाई गई है, जिनमें से केवल कुछ ही जैवनाशी गुणों के लिए विश्लेषण किए गए हैं और कई और कीटनाशक पौधों की खोज की प्रतीक्षा है। उष्णकटिबंधीय वन जैव विविधता से समृद्ध हैं। स्थानीय लोग विभिन्न और विशिष्ट उद्देश्यों के लिए विभिन्न पौधों के उत्पादों का उपयोग करते हैं। कई कार्यकर्ताओं ने स्थानीय लोगों द्वारा कीट विकर्षक, आकर्षक, भोजनरोधी और कीटनाशक गतिविधि के लिए कुछ पौधों की प्रजातियों के उपयोग को दर्ज किया। दूसरी ओर, दुनिया भर में कीटनाशक गुणों वाले नए यौगिकों की पहचान करने के लिए गहन प्रयास चल रहे हैं, जिनकी क्रियाविधि नवीन है। इसलिए, भा.वा.अ.शि.प. –व.जै.सं., हैदराबाद ने पत्ती खाने वाले कीटों के खिलाफ सैटिनवुड वृक्ष के आहाररोधी गुणों का अध्ययन किया है।

कार्यप्रणाली:

निष्कर्षण सोक्सलेट निष्कर्षण उपकरण में किया गया था। चयनित पौधों की पत्तियों वाले नमूनों को 6–7 दिनों तक हवा में सुखाया गया। पूरी तरह सूखने के बाद पौधों के हिस्सों को मिक्सर ग्राइंडर की मदद से चूर्ण में बदल दिया गया। पौधों की सामग्री को सोक्सलेट निष्कर्षण विधि (आंशिक आसवन विधि) द्वारा निकाला गया था।

तालिका 1: प्रयोगशाला मूल्यांकन में प्रयुक्त पौधों की प्रजातियों की सूची:

क्र.सं.	वानस्पतिक नाम	स्थानीय नाम	तेलुगु नाम	पारिवारिक नाम	पौधें का भाग प्रयुक्त
1.	*क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया*	सैटिनवुड पेड़	बिल्लूडु	मेलियासी	पत्ता

तालिका 2: अध्ययन के लिए चयनित परीक्षण कीट

क्र.सं.	साधारणनाम	वानिस्पतिक नाम	पारिवारिक नाम	क्रम
1.	सेमी लूपर	*अचिया जनाटा*	लेपिडोप्टेरान	नोक्टुइडे

निष्कर्षण के लिए पौधे का प्रसंस्करण

परिणाम:

चित्र–ए में प्रस्तुत परिणामों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि अनुपचारित नियंत्रण (5.288 ग्राम), 0.1 प्रतिशत उपचार (4.724 ग्राम) और 0.2 प्रतिशत उपचार (4.410 ग्राम) के बीच अंतर महत्वहीन थे। हालाँकि बाकी उपचारों और अनुपचारित नियंत्रण के बीच महत्वपूर्ण अंतर मौजूद थे। परीक्षण कीट के भोजन व्यवहार में कमी उपचार की सांद्रता में वृद्धि के अनुरूप है। संभावित रूप से अलग–अलग सांद्रता में परीक्षण कीट के भोजन व्यवहार के आधार पर आहाररोधी की डिग्री, अवरोही क्रम में व्यवस्थित 1.0 प्रतिशत (1,425 ग्राम)> 0.8 प्रतिशत (1.523 ग्राम)> 0.6 प्रतिशत (3.264 ग्राम)> 0.4 प्रतिशत

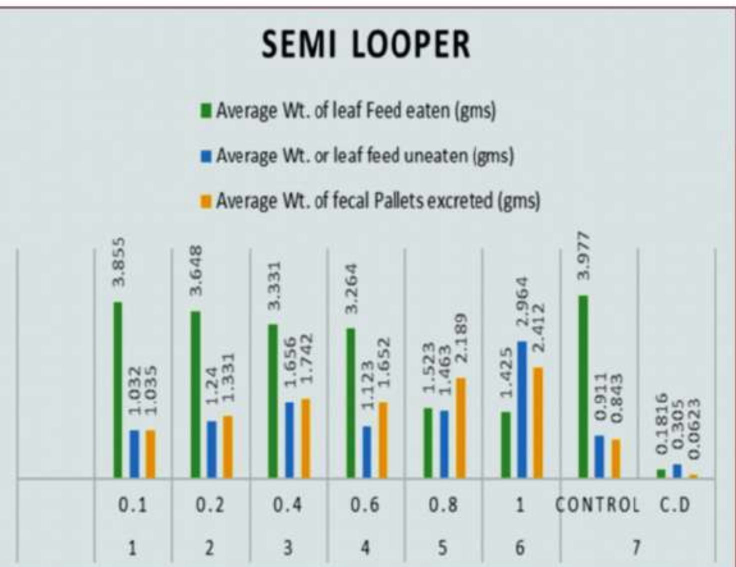

***क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया* की विभिन्न सांद्रता पर सेमी लूपर की सापेक्ष पोषण क्षमता**

(3.331 ग्राम)>0.2 प्रतिशत (3.648 ग्राम)> 0.1 प्रतिशत सांद्रता (3.855 ग्राम)> और अनुपचारित नियंत्रण (5.288 ग्राम/6.360 ग्राम) है।

अप्रयुक्त पत्ती आहार के मामले में, उपचार और अनुपचारित नियंत्रण के बीच और उपचार के बीच भी महत्वपूर्ण अंतर देखा गया। उपचार में पत्ती चारे की अधिकतम मात्रा 1.0 प्रतिशत सांद्रता (5.288 ग्राम) बची थी। सबसे कम पत्ती वाला चारा अनुपचारित नियंत्रण (0. 911 ग्राम) में छोड़ दिया गया, जिसके बाद 0.1 प्रतिशत सांद्रता (1.636 ग्राम/6.360 ग्राम) का उपचार किया गया। मल गोली उत्सर्जन के मामले में, उपचार और नियंत्रण के बीच और उपचारों के बीच भी महत्वपूर्ण अंतर दर्ज किया गया था। मल गोली का उत्सर्जन 1.0 और 0.8 प्रतिशत उपचार (2.412 और 2.189 ग्राम) के उपचार में सबसे अधिक था। उपचार में सबसे कम मल उत्सर्जन 0.1 प्रतिशत सांद्रता (0.843 ग्राम) पाया गया।

निष्कर्ष:

अचिया जनाटा लार्वा के खिलाफ परीक्षण किए गए पौधों के अर्क में, *क्लोरोक्सिलॉन स्विटेनिया* 1.0 प्रतिशत ने उच्चतम आहाररोधी गतिविधि दिखाई। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया है कि विभिन्न पौधों के अर्क की आहाररोधी गतिविधि की डिग्री कीट से कीट में भिन्न होती है, इसलिए कीट की समस्या पर निर्भर करता है और कीट के प्रभावी नियंत्रण के लिए एक विशेष प्रकार के अर्क को लागू करना पड़ता है।

सैलिक्स (विलो) के बहुउपयोगी पौधे: परिचय एवं महत्व

डॉ. बालकृष्ण तिवारी, श्री मंजीत कुमार, श्री नीरज शर्मा, डॉ. संदीप शर्मा,
भा.वा.अ.शि.प.–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान., शिमला

परिचय:

सैलिक्स तेजी से बढ़ने वाले पौधों का एक कुल है जिन्हें आमतौर पर विलो के नाम से जाना जाता है। इनकी पत्तियां लंबी, संकरी तथा दाँतेदार किनारों वाली होती हैं। परंतु कुछ प्रजातियों में गोल व अंडाकार पत्तियाँ भी पाई जाती हैं। नवंबर के अंत या दिसंबर की शुरुआत में पत्तियाँ गिरने लगती हैं तथा शीत काल के दौरान पौधे पत्ती रहित होते हैं। वसंत ऋतु के आगमन के साथ पौधों में नए पत्ते एवं फूल आने शुरू हो जाते हैं। विलो एकलिंगी होते हैं तथा नर व मादा पुष्प अलग–अलग पौधों पर लगते हैं। छोटे–छोटे नर एवं मादा पुष्पों का समूह एक विशेष प्रकार के पुष्पक्रम में पाया जाता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में कैटकिन कहा जाता है। कैटकिंस वसंत ऋतु में पत्तियों के लगने से पहले या नए पत्ते लगते ही बन जाते हैं। सेलिक्स की विभिन्न प्रजातियों में आसानी से संकरण हो सकता है। अतः इनके मिश्रित गुणधर्मों वाले संकर प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं। मिश्रित गुणधर्मों के कारण ये संकर प्रायः प्रजातियों की पहचान में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

दुनिया में *सैलिक्स* की लगभग 526 प्रजातियां हैं, जिनमें से अधिकांश उत्तरी गोलार्ध में वितरित हैं और दक्षिणी गोलार्ध में केवल कुछ प्रजातियां हैं। एशिया में, लगभग 375 प्रजातियां हैं, जो दुनिया की कुल 71.29 प्रतिशत है, जिसमें 328 स्थानीय प्रजातियां शामिल हैं। यूरोप में, लगभग 114 प्रजातियां, उत्तरी अमेरिका में लगभग 91, अफ्रीका में लगभग 8 और दक्षिण अमेरिका में केवल एक प्रजाति पाई जाती है। भारत से *सैलिक्स* की लगभग 33 प्रजातियाँ रिपोर्ट की गई हैं, जिनमें 7 वृक्षों वाली प्रजातियाँ जैसे कि *सैलिक्स टेट्रास्पर्मा, सैलिक्स एक्मोफाइला, सैलिक्स अल्बा, सैलिक्स फ्रेगिलिस, सैलिक्स बेबीलोनिका, सैलिक्स डैफनोइड्स* और *सैलिक्स एक्सेल्सा* शामिल हैं। भारत के शीत मरुस्थलीय क्षेत्रों में जहां तापमान में अत्याधिक उतार–चढ़ाव, बहुत कम वर्षा और अधिक हिमपात होता है,

शीत मरूस्थल में *सैलिक्स* के पौधे

सैलिक्स की झाड़ीदार प्रजाति

वहाँ *सैलिक्स* की विभिन्न वृक्ष एवं झाड़ीदार प्रजातियाँ पाई जातीं हैं। इनकी अत्यधिक उपयोगिता के कारण इन्हें शीत मरुस्थल की जीवन रेखा भी कहा जाता है।

पारिस्थितिकी

सैलिक्स प्रजातियां अपने पारिस्थितिक वितरण में भिन्न होती हैं और इन्हें दो प्रकारों में बांटा जा सकता है: जलोढ़ तथा आर्द्रभूमि। दोनों स्थितियों में *सैलिक्स* अपेक्षाकृत स्थिरता से बढ़ता है। अधिकांश *सैलिक्स* प्रजातियां हाइपोक्सिक (कम ऑक्सिजन) स्थितियों के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित हैं और उनमें से कुछ जैविक मिट्टी की अपेक्षा खनिज युक्त मिट्टी पसंद करते हैं। *सैलिक्स* प्रजाति के पौधों की एक विशेषता है कि ये उन क्षेत्रों में अच्छी तरह से बढ़ते है जो बाढ़ और कटाव के कारण और तलछट के जमाव के कारण क्षतिग्रस्त होते हैं। यह प्रायः खाइयों और दलदलों के किनारों पर और आर्द्रभूमि में आसानी से उगते है। *सैलिक्स* विशेष रूप से अच्छी जल आपूर्ति वाले क्षेत्रों में लगते है, परंतु इसकी प्रजातियों में परिवर्तन शीलता होने के कारण प्रतिकूल परिस्थितियों में भी ये पाये जा सकते है।

आनुवंशिक पहलू:

सैलिक्स प्रजातियाँ क्रोमोजोम संख्या में भिन्नताएं दिखाते हैं, जिसमें डिप्लोइड, टेट्राप्लोइड, हेक्साप्लोइड और यहां तक कि डोडेकैप्लॉइड भी शामिल हैं। *सैलिक्स* क्रोमोजोम संख्या में भिन्नता न केवल प्रजातियों के बीच, बल्कि एक ही प्रजाति की किस्मों के बीच भी होती है, जिससे *सैलिक्स* में वृक्ष सुधार करने में कठिनाई होती है। अत्यधिक संकर होने के कारण सैलिक्स को "टैक्सोनोमिक नाइटमेयर" की प्रजाति के रूप में भी संदर्भित किया जाता है। अधिक जीन प्रवाह और कम आनुवंशिक अंतर के कारण बाह्य रूप से प्रजातियाँ भिन्न दिखाई दे सकती हैं। हालांकि, *सैलिक्स* के प्राकृतिक हाईब्रिड्स की आनुवंशिक स्तर पर शायद ही कभी पूरी तरह से जांच की गई हो। *सैलिक्स* के उप–जेनेरा में होने वाले अंतर–विशिष्ट संकरण व विभिन्न वातावरणों में उगने की क्षमता होने के कारण इसकी प्रजातियों में व्यापक विविधता पायी जाती है।

महत्व और उपयोग:

सैलिक्स के पौधे बहुउपयोगी होते है। *सैलिक्स* की विभिन्न प्रजातियों के पौधों का एक विशेष पारिस्थितिक, सामाजिक एवं आर्थिक महत्व है। भारत के शीत मरुस्थल क्षेत्रों में इनकी लकड़ियों का उपयोग मुख्यतः परंपरागत मिट्टी के घरोव टोकरियों को बनाने तथा ईंधन की लकड़ी के रूप में किया जाता है। इनकी पत्तियां बकरियों एवं अन्य मवेशियों के लिए चारे का एक प्रमुख स्त्रोत है। जम्मू कश्मीर में *सेलिक्स अल्बा* (कश्मीरी विलो व इंग्लिश विलो) का उपयोग क्रिकेट बैट बनाने के लिए किया जाता है। इस उद्योग का वहाँ के लोगों की आजीविका में एक महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी लकड़ियों का उपयोग कागज उद्योग के लिए लुगदी, फर्नीचर, खिलौने, झाड़ू, बक्से, और छड़ी बनाने के लिए, किया जाता है। पारंपरिक चिकित्सा में, सैलिक्स के अर्क का उपयोग दर्द निवारक, एंटीसेप्टिक, गठिया, नसों का दर्द और आंतों के रोगों के इलाज के लिए भी किया जाता है। यह वसंत ऋतु में सबसे पहले फूल लगने वाले पौधों में से एक है, जो मधुमक्खियों, कीड़ों या पक्षियों को खाद्य स्रोत के रूप में उच्च मात्रा में पराग और अमृत प्रदान करते हैं।

खेती:

विलो की कलमों में बहुत आसानी से जड़ें लग जाती हैं अतः इनका प्रसार अधिकतर शूट प्रसार तकनीक द्वारा किया जाता है। इन्हें या तो जड़दार कलमों (कटिंग) या सेट (स्टेक्स) के माध्यम से उगाया जा सकता है। आमतौर पर 20–25 सेंटीमीटर लंबी और 1–2 सेंटीमीटर मोटी कलमों को नर्सरी में 60x30 सेंटीमीटर की दूरी पर लगाया

जाता है। अगली सर्दियों तक कटिंग 2.5–3 मीटर के रोपण योग्य आकार तक पहुंच जाती है इसकी खेती मुख्य रूप से नवंबर से मार्च के दौरान की जानी चाहिए। पौधे लगभग 4–6 वर्ष की अवधि में वृक्ष बन जाते हैं। सेट कलमों से बड़े होते हैं और इन्हें सीधे खेतों में लगाया जा सकता है। सेट 3 से 3.7 मीटर लंबी युवा शाखाओं से बनायी जाती हैं। इन्हें आमतौर पर मिट्टी में 60 सेमी की गहराई पर 1.8 X1.8 या 4 X 4 मीटर या 5 X 5 मीटर के अंतर पर लगाया जा सकता है। सैलिक्स को आमतौर पर नदी नालों के किनारों पर लगाया जाता है ताकि इसकी जड़ें पानी के अधिक बहाव से होने वाली क्षति से किनारों को बचा सके। पौधों को बढ़ने के लिए अच्छी नमी, उपजाऊ और सिंचित मिट्टी आवश्यक है।

निष्कर्ष:

यह प्रजाति शीत मरुस्थल क्षेत्र के लोगों की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अर्थव्यवस्था में विलो के योगदान को देखते हुए, उनकी खेती के व्यावसायिक पहलुओं का गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता है और उनके वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। हालाँकि, इस क्षेत्र में भूमि जोत का छोटा आकार बड़ी संख्या में ऐसे वृक्षारोपण की स्थापना के लिए एक प्रमुख बाधा के रूप में कार्य करता है। परंतु नालों में तथा पानी की नालियों के किनारे इन्हें खाली जमीन पर आसानी से उगाया जा सकता है।

अश्वगंधा: किसानों के लिए जलवायु परिवर्तन परिदृश्यों के मद्देनज़र एक संभावित लाभदायक औषधीय पौधा

श्री निखिल वर्मा[*], डॉ. नसीर मोहम्मद[*], श्री प्रियेश दुबे[*], डॉ. विश्वजीत शर्मा[**],
[*]**भा.वा.अ.शि.प. – उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर**
[**]**भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून**

अश्वगंधा का पौधा

वर्तमान परिदृश्य:

वैज्ञानिक रूप से, यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जलवायु परिवर्तन भारत समेत अन्य देशों में अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को विशेषतौर पर कृषि क्षेत्र को खतरा उत्पन्न कर रहा है। कृषि और किसान की आय, जो सीधे तौर पर पानी की उपलब्धता से जुड़ी हुई है, जलवायु परिवर्तन के प्रत्यक्ष प्रभाव का सामना कर रही है। बुरी खबर यह है कि निकट भविष्य में भारत के अधिकांश शहरों में पानी की कमी की भविष्यवाणी की गई है। यदि इसके कारक आगामी वर्षों में जारी रहता है, तो यह संभावना है कि वर्त्तमान की सिंचित कृषि भूमि मानसून पर निर्भर भूमि में बदल सकता है। बढ़ती आबादी और मानव के उपभोक्तावादी पैटर्न के कारण प्रदूषण भी खतरनाक स्तर पर पहुंच चुका है। हवा, पानी और भोजन की खराब गुणवत्ता संयुक्त रूप से मनुष्यों और अन्य जानवरों सहित पृथ्वी पर सभी जीवों के स्वास्थ्य को चुनौती दे रहा है। इस पूर्वानुमानित डरावना भविष्य के मद्देनज़र, भारत में गरीबी को दूर करने और किसानों की आय बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे सभी प्रयासों को जलवायु परिवर्तन निष्फल कर रहा है। इस दयनीय स्थिति में, हमें एक ऐसे पौधे की आवश्यकता है जिसकी खेती करने में कम मात्रा में पानी की आवश्यकता हो, जिसे आसानी से विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता हो, उच्च औषधीय मूल्य वाला हो, और एक तैयार बाजार उपलब्ध हो।

इन सभी गुणों को अपने में समाहित किया हुआ एक चमत्कारी पौधा हैं जो की अश्वगंधा के नाम से आयुर्वेद में वर्णित है.... जलवायु परिवर्तन परिदृश्यों के तहत यह पौधा सभी मानदंडों को पूरा करता है। कोविड–19 महामारी के दौरान भी यह पौधा सम्पूर्ण विश्व समुदाय को आशा की किरण दी। कई प्रतिष्ठित प्रयोगशालाओं ने इस वायरल संक्रमण से लड़ने में यह पौधे को अत्यंत असरदार साबित किया है। अनादिकाल से हमारी भारतीय संस्कृति इस प्रशंसित औषधीय पौधे का उपयोग व्यापक रूप से कर रही है। कृषि वानिकी मॉडल में भी, यह प्रजाति रबी फसल के रूप में बहुत उपयुक्त है।

अश्वगंधा का परिचय:

अश्वगंधा व्यावसायिक महत्व की एक औषधीय फसल है जो सोलेनेसी कुल से संबंधित है जिसका फल पकने पर छोटे लाल टमाटर की तरह दिखाई देता हैं, और अपने उच्च चिकित्सीय मूल्यों के कारण इस पौधे को पैनेक्स जिनसेंग के एक विकल्प के रूप में माना जाता है। कमजोरी से संबंधित सभी बीमारियों में सामान्य टॉनिक के रूप में इसके व्यापक उपयोग के कारण इसे भारतीय जिनसेंग कहा जाता है। इसका उपयोग 5000 से अधिक वर्षों से आयुर्वेद और चिकित्सा की अन्य स्वदेशी प्रणालियों में रोगों की एक विस्तृत श्रृंखला के इलाज के लिए किया जाता है। अश्वगंधा पौधे के मुख्य सक्रिय घटक एल्कलॉइड और स्टेरायडल लैक्टोन हैं। महत्वपूर्ण रासायनिक घटक (विथेनोलाइड्स) जड़ों, पत्तियों और फलों में मौजूद होते हैं। भारतीय प्रकार के अश्वगंधा की जड़ों में कुल अल्केलोइड तत्व 0.13 – 0.31 के बीच रिपोर्ट की गई है।

अश्वगंधा की सूखी जड़ों का चिकित्सा की भारतीय पारंपरिक प्रणालियों में सक्रिय औषधीय अवयवों के मूल्यवान स्रोत के रूप में उपयोग किया जाता है। यह आयुर्वेद, यूनानी और सिद्धा जैसे पारंपरिक फार्मेसियों में 100 औषधि मिश्रण में आवश्यक घटक के रूप में या पूरा हिस्सा होता हैं। पौधे की जड़ों को रसायन के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जो जीवन शक्ति और दीर्घायु के लिए एक टॉनिक के रूप में कार्य करता है।

अश्वगंधा की खेती:

अश्वगंधा मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक और महाराष्ट्र में उगाया जाता है। इसकी खेती भारत में 8,429 टन उत्पादन के साथ 10,780 हेक्टेयर में फैली हुई है चूंकि इसमें वर्षा आधारित परिस्थितियों में बढ़ने की क्षमता है, इसलिए भारत में नए क्षेत्रों में इसकी खेती बढ़ाने की आवश्यकता है। अश्वगंधा रेतीली दोमट मिट्टी में, थोड़ी क्षारीय मिट्टी में अच्छी जल निकासी की स्थिति के साथ अच्छी तरह से बढ़ता है। यह 600–1200 मीटर ऊंचाई तक बेहतर बढ़ता है। कम वर्षा प्राप्त करने वाले अर्ध–उष्णकटिबंधीय क्षेत्र इस फसल की खेती के लिए उपयुक्त हैं। फसल को अपनी बढ़ती अवधि के दौरान शुष्क मौसम की आवश्यकता होती है। 20 डिग्री सेल्सियस से 35 डिग्री सेल्सियस के बीच का तापमान खेती के लिए सबसे उपयुक्त है। देर से सर्दियों की बारिश पौधे की जड़ों के समुचित विकास के लिए अनुकूल होती है। भूमि की तैयारी अश्वगंधा आमतौर पर उन खेतों में उगाई जाती है जो सिंचाई प्रणालियों द्वारा अच्छी तरह से कवर नहीं होते हैं। जिस खेत पर कम वर्षा के कारण खाद्य फसलों को लाभप्रद रूप से नहीं उगाया जा सकता है, ऐसे खेतों का उपयोग अश्वगंधा की खेती के लिए किया जा सकता है।

नर्सरी उगाना और रोपण:

अश्वगंधा के फसल को ब्रॉडकास्टिंग या लाइन विधि से बोया जाता है। जड़ उत्पादन में वृद्धि के लिए लाइन टू लाइन विधि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि यह विधि किसानों द्वारा आवश्यक होने पर इंटरकल्चरल प्रैक्टिस को करने में भी मदद करता है। नर्सरी में आमतौर पर जून–जुलाई के दौरान बीज लगभग 1–3 सेमी गहरा बोया जाता है। बुवाई के बाद अच्छे अंकुरण के लिए हल्की बौछार लाभदायक होती है। एक हेक्टेयर खेत के लिए लगभग 5 से 12 किलोग्राम बीज पर्याप्त होते हैं। 25 से 35 दिन के पौध को पौधों और पंक्तियों के बीच 30–30 सेमी की दूरी पर खेतों में प्रत्यारोपित किया जाता है। चूंकि अश्वगंधा रबी फसल है, इसलिए इसकी बुवाई का समय खेती के क्षेत्र में मानसून के वापसी की तारीख से तय किया जाना चाहिए।

विरलन और निराई:

ब्रॉडकास्टिंग द्वारा या पंक्ति में बोए गए बीजों को बुवाई के 25 से 30 दिनों के बाद पौधों का विरलन किया जाना चाहिए ताकि पौधे का घनत्व लगभग 30–60 पौधे प्रति वर्ग मीटर (लगभग 20,000 से 25,000 पौधे / हेक्टेयर) हो जाए। प्रारंभिक अवस्था में एक निराई अश्वगंधा पौधों के विकास के लिए पर्याप्त है।

खाद और उर्वरक:

अश्वगंधा की फसल को खाद और उर्वरकों की भारी खुराक की आवश्यकता नहीं होती है। मध्य प्रदेश में, जहां इसे वाणिज्यिक पैमाने पर उगाया जाता है, कोई उर्वरक नहीं लगाया जाता है और फसल की खेती केवल अवशिष्ट उर्वरता पर की जाती है।

सिंचाई:

रोपाई के बाद हल्की बौछार रोपाई की स्थापना सुनिश्चित करती है। यदि वर्षा नियमित अंतराल पर होती है तो सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अत्यधिक वर्षा/पानी फसल के लिए हानिकारक है। अश्वगंधा के लिए आवश्यक होने पर ही केवल जीवन रक्षक सिंचाई देनी चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि अश्वगंधा एक शुष्क भूमि की फसल है और इसे ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती है।

कटाई व उपज:

फसल परिपक्व होने पर इसकी पत्तियां सूखने लगती हैं तथा फल लाल–पीले होने लगते हैं। फरवरी से अप्रैल यानी बुवाई के 150 से 180 दिन बाद फसल को काटा जाता है तथा खुदाई करके जड़ों को निकाल लिया जाता हैं। औसतन एक हेक्टेयर क्षेत्रफल से 3–5 क्विंटल सूखी जड़ें और 50–75 किलोग्राम बीज प्राप्त किये जा सकते हैं।

अश्वगंधा की मुख्य मंडी:

अश्वगंधा का हर एक भाग उपयोगी होता हैं एवं बाज़ार में बिकता हैं, जड़, पत्ती, तना एवं बीज सभी भाग अलग–अलग रेट पर बाज़ार में बिकते हैं। मुख्य रूप से इनके जड़ की मांग जड़ी –बूटी मंडी में होती हैं। जड़ का रेट ग्रेडिंग के आधार पर तय होता है। मोटी जड़ों का बाज़ार भाव ज्यादा होता हैं वही पतली जड़ बाज़ार में कम रेट पर बिकती हैं, अश्वगंधा बेचने वाले किसान भी अपनी उपज को ग्रेडिंग करके बेचते हैं जिससे बाज़ार में भाव ज्यादा मिले।

ग्रेडिंग:

मंडी में निम्नलिखित ग्रेडिंग की जड़े बिकती हैं:

ए ग्रेड: इसमें 7 सेमी से अधिक लंबाई के, और 1 से 1.5 सेमी व्यास के बेलनाकार जड़ शामिल होती हैं।

बी ग्रेड: 1 सेमी व्यास के साथ 5 सेमी से 7 सेमी लंबाई के जड़ के टुकड़े इसमें शामिल होते हैं।

सी ग्रेड: 1 सेमी या उससे कम व्यास के साथ 3–4 सेमी लंबाई के जड़ के टुकड़े इसमें शामिल होते हैं।

लोअर ग्रेड: छोटे जड़ के टुकड़े इसमें शामिल होते हैं।

मध्य प्रदेश का नीमच और मंदसौर बाजार अश्वगंधा के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं। आयातक, देश के भीतर के खरीदार, प्रोसेसर, पारंपरिक चिकित्सक, आयुर्वेदिक और सिद्धा दवा के निर्माता इन बाजारों में आते हैं और हर साल अश्वगंधा की जड़ों की खरीद करते हैं।

अश्वगंधा की खेती को बढ़ावा देने के लिए एन.एम.पी.बी. (राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड) ने खेती के लिए प्राथमिकता वाले सूची में इस औषधि पौधा को रखा हैं और इसकी खेती करने पर 30% सब्सिडी प्रदान करता है।

मध्यप्रदेश के नीमच स्थित हर्बल मंडी में अश्वगंधा की जड़ें बेच रहे किसान

विविधा

4. जैवविविधता: पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने वाली नींव में एक महत्वपूर्ण स्तंभ

श्री डी. शिवसत्य प्रसाद, श्री वरूण सिंह
भा.वा.अ.शि.प.-वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

हमारी पृथ्वी पर कई प्रकार के पेड़, पौधे और पशु मौजूद है। इन विभिन्न पौधों और जानवरों की प्रजातियों की पारिस्थितिक उपस्थिति को जैवविविधता कहा जाता है साथ ही इसे जैविक विविधता के रूप में भी जाना जाता है। जैव विविधता पृथ्वी के संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। हाल के वर्षों में पाया गया है कि विभिन्न कारकों के कारण जैव विविधता का संतुलन डिग रहा है। ऐसा न हो इसलिए इसमें सभी देशों द्वारा कई रणनीतियाँ गठित की गयी जो पृथ्वी की जैवविविधता के संरक्षण और सुधार को बढ़ावा देती हैं।

नोटः तस्वीर इंटरनेट के स्त्रोत से ली गई है।

जैवविविधता संवर्धन तकनीक

जारी किए गए कई वन एवं वन्यजीव संरक्षण गतिविधियों में से एक है वन्यजीव गलियारों का निर्माण। बढ़ती आबादी के कारण धरती पर वन क्षेत्र कम होते जा रहे हैं और नगरों को जोड़ने के लिए वनों को काटते हुए रास्ता बनाया जा रहा है जिससे वन्यजीव निवास स्थल बटकर कई टुकड़ों में विभाजित हो रहे। इसलिए, वन्यजीव गलियारे बनाने के लिए कई तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है जिससे जानवरों को एक जगह से दूसरी जगह जाने में मदद हो सके। जैवविविधता को बढ़ावा देने के सबसे सरल तरीकों में से एक है घरों में बगीचे लगाना। यार्ड में या बालकनी पर, आप विभिन्न प्रकार के पौधों और जानवरों को पाल सकते हैं। इससे घर में ताजी हवा की मात्रा में सुधार होगा।

छत उद्यान

जैवविविधता के संरक्षण में, संरक्षित स्थल जैसे वन्य जीव अभयारण्य और चिड़िया घर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, वे पौधों और जानवरों के प्राकृतिक पर्यावरण को संरक्षित करते हैं, इसके अलावा, ये स्थान किसी भी मानव सभ्यता से दूर होते हैं, नतीजतन, पारिस्थितिकी को अच्छी तरह से सुरक्षित रखा जाता है, जिससे यह वनस्पतियों और वन्य जीवन के लिए एक आदर्श प्रजनन स्थल होते हैं। अतः संरक्षण के इस उद्देश्य

को ध्यान में रखते हुए दुनिया भर में संरक्षित क्षेत्रों के साथ–साथ सामुदायिक वनों को बढ़ावा दिया जाना है या प्रोत्साहित किया जाना है और उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक दिशा–निर्देश जारी किए जाने चाहिए।

संरक्षित क्षेत्र

री–वाइल्डिंग–सदियों से चली आ रही क्षति को रोकने के लिए री–वाइल्डिंग की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, री–वाइल्डिंग में लुप्तप्राय प्रजातियों को उन जगहों पर फिर से शामिल किया जाता है जहां वे विलुप्त हो गए हैं। विभिन्न मानवीय गतिविधियों ने हाल के वर्षों में जैवविविधता को खतरे में डाल दिया है। अगर यह इसी गति से आगे भविष्य में चलता रहा तो जंगलों की अधिकांश महत्वपूर्ण प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएँगी और पारिस्थितिक संतुलन पर प्रति कूल प्रभाव डालेगी, इसलिए हमें अपने वन्य जीवन और पौधों की प्रजातियों की रक्षा के लिए उचित कार्रवाई करनी चाहिए।

जैवविविधता का महत्व

प्राकृतिक प्रणाली के सतत अस्तित्व के लिए जैवविविधता महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से कई पौधे और पशु प्रजातियां एक दूसरे पर निर्भर हैं। यह मानव जाती के लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि पौधें और जानवर इस शृंखला के महत्वपूर्ण अंग हैं। यदि पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ता है तो पृथ्वी के जलवायु में परिवर्तन में इसका गंभीर रूप से असर होगा और हमें अनुकूल वातावरण से वंचित होना पड़ सकता है।

अतः हमें प्रजातियों के विलुप्त होने को रोकने के लिए ठोस कदम उठाने की जरूरत है क्योंकि पौधे और पशु जैवविविधता के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है। साथ ही हमें वाहनों से होने वाले प्रदूषण को कम करने के लिए भी अन्य विकल्पों जैसे इलेक्ट्रिक कार एवं इको–फ्रेंडली तरीकों पर जोर देने की आवश्यकता है ताकि सभी ताजी हवा में सांस ले सकें। साथ ही साथ यह ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव को कम करेगा, जो कि प्रजातियों के विलुप्त होने का प्रमुख कारक है।

काष्ठ शरीर विज्ञान - एक परिचय

डॉ. धीरेन्द्र कुमार, श्री धीरज कुमार, डॉ. आशुतोष पाठक
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

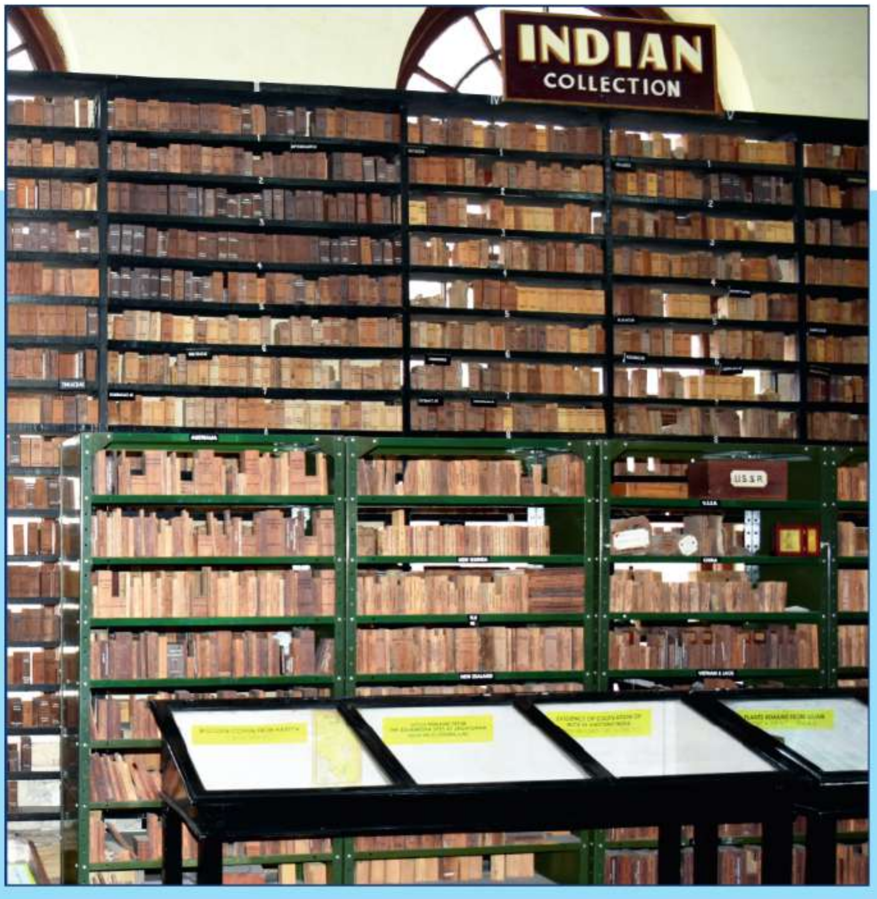

वर्तमान समय में लकड़ी की वस्तुओं का प्रयोग विशेष रूप से प्रचलित है। हम सभी को लकड़ी के बने दरवाजे, खिड़कियाँ, आलमारी, फर्नीचर, खिलौने एवं विभिन्न तरह के उत्पाद अत्यंत पसंद आते हैं। लकड़ी की वस्तुओं के उपयोग हेतु समाज में आजकल दो तरह की धारणायें बनीं हुई हैं– एक वर्ग पर्यावरण संरक्षण के लिए वृक्षपातन को नकार कर अन्य विकल्प तलाशनें एवं उपयोग करने का इच्छुक है तो वहीं दूसरा वर्ग अधिक से अधिक वृक्ष लगाकर उनके विभिन्न अवयवों का सही तरीके से प्रयोग करने पर जोर देता दिखाई देता है। अगर गौर से देखा जाये तो दूसरे वर्ग की बात ज्यादा प्रभावी है क्योंकि इस प्रकार से पेड़ लगाने की प्रक्रिया को बल मिलेगा तथा पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा मिलेगा।

काष्ठ की पहचान का महत्व

लकड़ी का सतत उपयोग करने हेतु हमें प्रत्येक लकड़ी के गुण–धर्म से परिचित होना आवश्यक है। काष्ठ शरीर विज्ञान के माध्यम से हम लकड़ी की आंतरिक संरचना का अध्ययन किए गए संरचना के आधार पर लकड़ी के गुण निर्धारित किए जाते हैं जिसके आधार पर उस लकड़ी विशेष का उचित मूल्यांकन कर उसका उपयोग निश्चित किया जाता हैं।

हर प्रजाति की लकड़ी की अपनी एक विशेषता होती है ताकि हम उपयुक्त लकड़ी को ही किसी विशेष उद्देश्य में प्रयोग करें। सरल भाषा में इसको समझा जाए तो हम कह सकते है जैसे हर इंसान की अपनी एक विशेषता होती है। ठीक उसी प्रकार सही जगह पर सही लकड़ी का ही प्रयोग होना चाहिए और उसके लिए सबसे पहले लकड़ी की पहचान होना अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा जैसे कि–

- लकड़ी, या लकड़ी के उत्पादों की सही पहचान से उनका उचित मूल्यांकन किया जा सकता है।
- हमारे देश में बहुत सी लकड़ियाँ निर्यात के लिए

प्रतिबंधित है उदाहरण के लिए रक्त चंदन अगरवूड आदि ऐसी लकड़ियों का निर्यात गैरकानूनी है। ऐसे में निर्यात की जा रही लकड़ी प्रतिबंधित लकड़ियों में से तो नहीं है, इसकी पुष्टि करने के लिए उसकी पहचान करना बहुत आवश्यक हो जाता है।

- ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण लकड़ी के ढांचे यानी पुरातात्विक स्मारकों का पुनरोद्धार करते समय उसी प्रकार की लकड़ी का उपयोग करना पसंद करते हैं जो मूल रूप से प्रयोग की गई थी और इसके लिए लकड़ी के मूल टुकड़ों की पहचान की आवश्यकता होती है।
- हम सब अपने दिन प्रतिदिन के कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के कागज का प्रयोग करते हैं। ये विभिन्न कागज विभिन्न प्रकार की लकड़ी की लुग्दी से बनते हैं। अगर हमें लकड़ी की संरचना का पता है तो हम बता सकते हैं कि उससे कैसा कागज बनेगा। इसका महत्व फोरेंसिक मामलों में काफी होता है। जैसे– यह पता लगाने में कि मुद्रा, वसीयत के दस्तावेज, स्टाम्प पेपर आदि असली है या नकली।
- अलग–अलग पेड़ की प्रजातियां और अलग–अलग लकड़ी की रचनाएं अलग–अलग जलवायु की विशेषताओं को दर्शाते हैं। करोडों साल पुरानी जीवाश्म लकड़ी की पहचान से प्राचीन वन और पर्यावरण की स्थिति के पुनर्निर्माण और जलवायु परिवर्तन का आकलन करने में भी यह विशेष भूमिका अदा करता है।

लकड़ी की पहचान कैसे करते हैं

विभिन्न लकड़ी की प्रजातियों की आंतरिक सरंचना भिन्न भिन्न होती है जिसके परिणाम स्वरूप उनके गुण एवं विशेषताएं अलग अलग होती हैं। भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान देहरादून में भारतवर्ष की लगभग सभी लकड़ियों का संग्रह है जिसे जायलेरियम कहा जाता है। इन सभी लकड़ियों की आंतरिक सरंचना का अध्ययन किया जा चुका है और हर लकड़ी में मौजूद विशिष्ट आकृति को चिह्नित किया गया है। जब भी कोई लकड़ी पहचान हेतु प्राप्त होती है तो उसकी आंतरिक सरंचना का मिलान जायलेरियम में मौजूद लकड़ियों की आंतरिक सरंचना से करके उसकी पहचान की जाती है। भा.वा.अ.शि.प.–वन अनुसंधान संस्थान के जायलेरियम में देश–विदेश के लगभग 20000 लकड़ी के नमूने हैं।

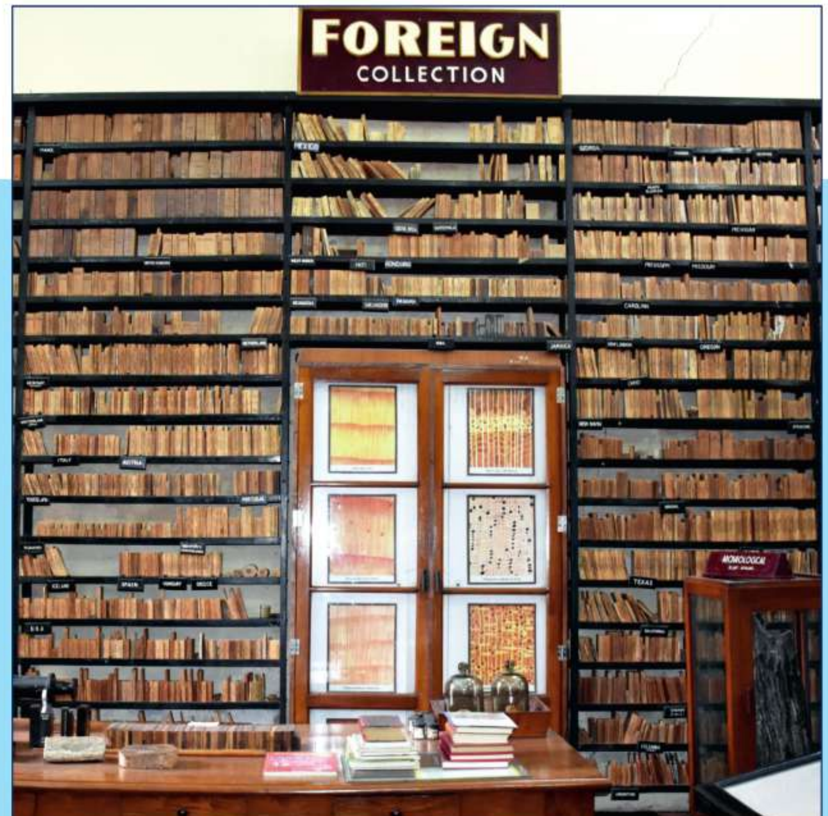

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,
देहरादून, उत्तराखण्ड।

वन महोत्सव- वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का पारस्परिक समावेशन एवं नवाचार

श्री सत्यव्रत सिंह, श्रीमती अनिता तोमर
भा.वा.अ.शि.प.-पारिस्थितिक पुनर्स्थापन केंद्र, प्रयागराज

परिचय

वन महोत्सव, जिसे हम 'पेड़ों के त्योहार' के रूप में भी जानते हैं, भारत में जुलाई के पहले सप्ताह के दौरान मनाया जाने वाला एक वार्षिक, सप्ताह भर चलने वाला वृक्षारोपण उत्सव है। वन महोत्सव को 1950 में कृषि मंत्रालय द्वारा पारिस्थितिक एवं पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने में पेड़ों और जंगलों के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए शुरू किया गया।

वन महोत्सव का इतिहास

इस आंदोलन का इतिहास वर्ष 1947 से जुड़ा है, जब पंजाबी वनस्पतिशास्त्री एमएस रंधावा ने 20 से 27 जुलाई तक वृक्षारोपण सप्ताह का आयोजन किया था। इस पहल का मुख्य उद्देश्य देश में वनों की कटाई के प्रभाव को रोकने पर जोर देना था। तीन साल बाद 1950 में के. एम. मुंशी ने इस आंदोलन को राष्ट्रीय गतिविधि घोषित किया और इसके बाद उन्होंने इस आयोजन को 'वन महोत्सव' नाम दिया और इसे जुलाई के पहले सप्ताह में आयोजित करने का निर्णय लिया। डॉ. मुंशी चाहते थे कि यह पहल सिर्फ पेड़ लगाने के अभियान से कहीं बढ़कर हो। वो इसे एक महोत्सव के रूप में लोगों के बीच लाना चाहते थे जिसे लोग एक पर्व के रूप में मनाएं। ये उस समय भारत के केंद्रीय कृषि मंत्री थे, उन्होंने पारिस्थितिक सद्भाव को बनाए रखने और पर्यावरण स्थिरता को बढ़ावा देने, पेड़ों और जंगलों के मूल्य को बढ़ाने के लिए वन महोत्सव की स्थापना की थी। सभी उम्र के स्वयंसेवक और सरकारी अधिकारी वृक्षारोपण की इस गतिविधि में भाग लेते हैं।

वन महोत्सव भारत में एक महत्वपूर्ण वार्षिक अवसर के रूप में जाना जाता है, समय के साथ इस उत्सव ने भारत में अधिक हरित स्थानों के विकास में योगदान दिया है और पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत के समर्पण को भी दर्शाता है।

भारत में वन महोत्सव सप्ताह कैसे मानाते हैं?

भारत में वन महोत्सव सप्ताह को कुछ प्रमुख तरीकों से मनाते हैः

वृक्षारोपणः

वृक्षारोपण वन महोत्सव सप्ताह के दौरान होने वाला सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, इस समय बारिश का शुरूआती चरण चल रहा होता है, इस समय पौध के जीवित रहने की संभावनाएं ज्यादा होती हैं। सरकारी, गैर–सरकारी

संगठन और सभी उम्र के स्वयंसेवक मिलकर देश भर में पौधरोपण करते हैं। स्कूल और कॉलेज जैसे संस्थान सभी वृक्षारोपण कार्यक्रमों में भाग लेते हैं।

जागरूकता अभियानः

वन महोत्सव सप्ताह के दौरान, जलवायु परिवर्तन को रोकने में वनों और पेड़ों के मूल्य के बारे में, जागरूकता बढ़ाने के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन पहलों में पेड़ों के लाभों के बारे में जानकारी दी जाती है।

कार्यशालाएँ और संगोष्ठियांः

पर्यावरण जागरूकता बढ़ाने और लोगों को स्थायी आदतों को अपनाने के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करते हैं। इन कार्यशालाओं और संगोष्ठियों में पर्यावरण संरक्षण, पर्यावरण के अनुकूल जीवन और टिकाऊ कृषि के विषयों को शामिल किया जाता है।

प्रतियोगिताएंः

जागरूकता और भागीदारी बढ़ाने के लिए वन महोत्सव सप्ताह के दौरान कई प्रतियोगिताएं जैसे— चित्रकला, खेल, निबंध लेखन और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं आयोजित की जा सकती हैं, ये गतिविधियाँ लोगों को पर्यावरण संरक्षण के बारे में अधिक जानने और इस पर्व में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित भी करेंगी।

सरकार की पहलः

वन महोत्सव सप्ताह के दौरान, भारत सरकार के द्वारा वृक्षारोपण और वन संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए कार्यक्रमों में किसानों को मुफ्त पौध देना, ग्रामीण क्षेत्रों में वनीकरण को प्रोत्साहित करना और सड़कों के किनारे हरित पट्टी की स्थापना करना शामिल है।

वन महोत्सव के उद्देश्यः

वनों के संरक्षण, सुरक्षा को बढ़ावा देना, पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने और पर्यावरण स्थिरता बनाये रखने में पेड़ों के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करना, लोगों को वृक्षारोपण गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना और उन्हें पर्यावरण और मानव कल्याण के लिए पेड़ों के लाभों के बारे में जागरूक करना, अधिक पेड़ लगाकर और वनीकरण को बढ़ावा देकर भारत में हरित आवरण को बढ़ाना, जलवायु परिवर्तन को कम

करने, मिट्टी के कटाव को रोकने, स्वच्छ हवा और पानी प्रदान करने और जैव विविधता को बढ़ावा देने में पेड़ों और जंगलों के महत्व के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करना ही इस महोत्सव की प्राथमिकता है।

वन महोत्सव के महत्व

समुदायों को मजबूत करता हैं:

वृक्षारोपण मानव समुदायों को एक साथ लाने और साझा उद्देश्य की भावना पैदा करने में मदद कर सकता है। इससे वानिकी क्षेत्र में रोजगार के अवसर भी पैदा किये जा सकते हैं वर्तमान में बढ़ी हुई मानव आबादी के ध्यान को पर्यावरण एवं उसके बचावों हेतु केन्द्रित करने के लिए वन महोत्सव अत्यंत लाभकारी है, इससे हम एक दूसरे के बीच साझा संवाद स्थापित कर एक बड़ी आबादी द्वारा उत्पन्न कचरे की मात्रा में कमी ला सकते हैं जिनसे पारिस्थितिक तंत्र को बिनासकारी परिणामों से बचाया जा सके।

पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देता है:

वन महोत्सव लोगों को पेड़ लगाने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ ही पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में पेड़ों के महत्व के बारे में अधिक जागरूक होने का एक अवसर प्रदान करता है। अधिक पेड़ लगाने से जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है।

जैव विविधता को बढ़ावा देता है:

पेड़ वन्यजीवों की एक विस्तृत श्रृंखला के लिए आवास प्रदान करते हैं, जो जैव विविधता को बढ़ावा देने और पारिस्थितिक संतुलन का समर्थन करने में मदद करते हैं।

मानव स्वास्थ्य में सुधार:

अधिक पेड़ लगाकर हम हवा की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं जिससे हम सांस लेते हैं और भूगर्भ जल, जो पानी हम पीते हैं, की गुणवत्ता को बचाए रखने के लिए एवं मानव स्वास्थ्य के लिए यह अति अवश्यक है।

निष्कर्ष

वन महोत्सव दिवस के माध्यम से पेड़ों के लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ाने और लोगों को पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों में और अधिक सक्रिय होने के लिए प्रोत्साहित करने का एक महत्वपूर्ण अवसर होगा। भविष्य में वन महोत्सव की व्यापक रूप से पर्यावरणीय संकटों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका होगी, वो चाहे घटते भूगर्भ जलस्तर, सूखती नदियाँ, प्राकृतिक आवासों का उजड़ना, जैविक खेती के लिए मवेशियों की कमी, पृथ्वी के बढ़ते तापमान से बीज प्रजातियों में संकट की स्थितियाँ एवं शुद्ध वायुमंडलीय हवाये हों। वन क्षेत्रों की सघनता घटने के कारण कम वर्षा से गुणवत्तापूर्ण मिट्टी के क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है, जिसको रोकने के लिए वर्तमान परिदृश्य में सरकारें तथा आम नागरिक व्यापक क्षेत्र में वृक्षारोपण कर तो देते हैं पर उनकी उचित सुरक्षा व रखरखाव न होने के कारण हमें असफलता मिलती है, यह बढ़ते समय के साथ–साथ पर्यावरण के लिए चिंता का विषय है, उपयुक्त सुरक्षा साधनों के आभाव में हमें धन तथा श्रम दोनों की हानि का सामना करना पडता है, जिससे दूसरे विकास कार्यों में इसके बुरे प्रभाव देखने को मिलते हैं। अधिक पेड़ लगाकर और उनकी सुरक्षा तथा रखरखाव का प्रबंध कर हम कृषकों व नागरिकों के परिवेश में बड़े बदलाव कर, इससे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने, पर्यावरण की रक्षा करने और मानव कल्याण को बढ़ावा देने में हम अपनी सार्थक भूमिका निभा सकते हैं।

शहरों के विकास के लिए वनों की कटाई–संघर्ष या सहयोग

डॉ.कुमुद दुबे, सुश्री दर्शिता रावत, श्री आशीष कुमार
भा.वा.अ.शि.प.- पारिस्थितिक पुनर्स्थापन केंद्र, प्रयागराज

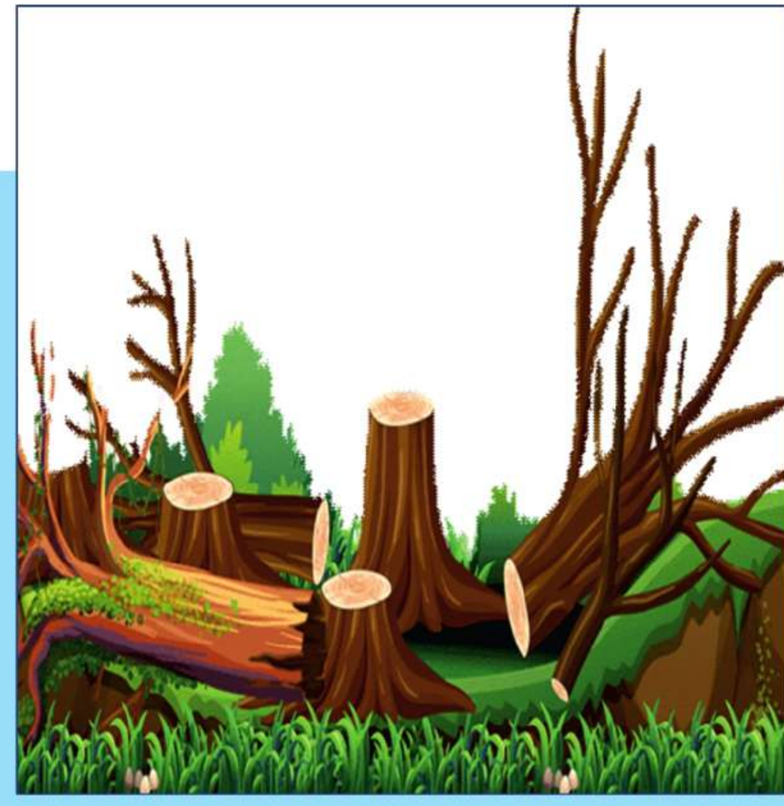

आधुनिक युग में विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच एक महत्वपूर्ण संतुलन स्थापित करना हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। वनों की कटाई और उनका विनाश विशेषकर शहरों के विकास के लिए हो रहा है, जो कि आने वाले दिनों में हमारे लिए समस्याओं का स्रोत बन सकता है। विकास की दिशा में वनों की कटाई, आधुनिक युग में विकास और पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण और गंभीर विवादित मुद्दा है। विकास की दिशा में हमें अग्रणी बनने की जरूरत है, लेकिन इसके साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की भी जिम्मेदारी है। वनों की कटाई और उनका विनाश विकास के लिए अक्सर आवश्यक माना जाता है, लेकिन यह वातावरणीय संतुलन और जैव विविधता के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक प्रश्न उत्पन्न करता है। विकास के लिए वनों की कटाई का तंत्र अक्सर इसलिए आम माना जाता है क्योंकि उसे आवश्यकता माना जाता है। शहरीकरण, सड़क निर्माण, उद्योग विकास और नए आवासीय क्षेत्रों के लिए जमीन की आवश्यकता वनों की कटाई के सामने उत्पन्न होती है।

वनों की कटाई की आवश्यकता

शहरों के विस्तार के लिए जमीन की आवश्यकता होती है, और इसके लिए वनों की कटाई अक्सर स्थानीय और राष्ट्रीय विकास के कारण की जाती है। वनों के बिना बड़ी परियोजनाओं जैसे कि महामार्ग, उद्योग विकास या आवासीय क्षेत्रों की अनुमति नहीं मिलती है। शहरों के विस्तार के लिए जमीन की आवश्यकता अनिवार्य है, और इसके लिए वनों की कटाई अक्सर एक महत्वपूर्ण कारक होती है। विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करना विशेष रूप से विवादित और चुनौतीपूर्ण है। शहरों का विस्तार और विकास नए और मजबूत इंफ्रास्ट्रक्चर की आवश्यकता के कारण होता है। लोगों की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नए आवासीय क्षेत्र, सार्वजनिक सुविधाएं, और व्यापारिक क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। इसके लिए अक्सर वनों के क्षेत्रों का उपयोग किया जाता है, जिससे वनों का अवसाद होता है।

वनों का महत्व प्राकृतिक संतुलन के लिए होता है। वे ऑक्सीजन उत्पादन करते हैं, वातावरणीय प्रदूषण को कम करते हैं, और जैव विविधता को संरक्षित रखते हैं। इनके

बिना प्राकृतिक संसाधनों का संतुलन और जैवविविधता पर बुरा असर पड़ता है, जिससे क्लाइमेट परिवर्तन और वातावरणीय अस्थिरता बढ़ सकती है। इस समस्या का समाधान विकास की दिशा में नए दृष्टिकोण से किया जा सकता है। उचित वन प्रबंधन, वन्यजीव अभयारण्यों की स्थापना, और पर्यावरणीय संरक्षण के प्रोत्साहन के माध्यम से हम वनों की सुरक्षा और संरक्षण को सुनिश्चित कर सकते हैं। इसके साथ ही, अधिक संवेदनशील और समर्थनशील विकल्पों का अध्ययन करना और उन्हें अपनाना भी आवश्यक है। हमें विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए सकारात्मक और समयानुकूल नीतियों का पालन करना होगा। इससे हम समृद्ध और स्थायी भविष्य की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।

वनों के महत्व

वनों का महत्व पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए अनमोल है। वन अवसाद को रोकने में मदद करते हैं और वायुमंडलीय प्रदूषण को कम करते हैं। वृक्षों का निर्वाह ऑक्सीजन उत्पादन के लिए जिम्मेदार होता है और वे अवसाद गैसों को अवशोषित करते हैं, जिनसे क्लिमेट परिवर्तन का प्रभाव कम होता है। वन ऑक्सीजन के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण होते हैं और वायुमंडलीय प्रदूषण को नियंत्रित रखने में मदद करते हैं। इनके बिना वातावरणीय संतुलन खतरे में आ सकता है, जो कि क्लिमेट परिवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। इसलिए, विकास के साथ–साथ हमें वनों की संरक्षण के लिए भी प्रयास करना होगा। समय के साथ, हमें स्थानीय समुदायों को सशक्त करते हुए वनों का उचित प्रबंधन करने और उनकी पुनर्वास की प्रक्रिया को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि हम विकास के साथ ही प्राकृतिक संसाधनों को भी संरक्षित रखते हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण छोड़ते हैं।

विकास बिना वनों के

विकास के लिए वनों की कटाई को कम करने के कई तकनीकी और नैतिक समाधान हैं। उचित वन प्रबंधन, पुनर्वास और वनों की स्थापना की अद्वितीय प्रक्रियाएं हैं जो वनों को संरक्षण को सुनिश्चित करती हैं। स्थानीय समुदायों को सशक्त करने के लिए वन्यजीव अभयारण्यों की स्थापना और संवर्धन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

विकास के लिए वनों की कटाई को कम करने के लिए कई तकनीकी और नैतिक समाधान हैं जो प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षण को सुनिश्चित करते हैं। इन समाधानों के माध्यम से हम वनों का संरक्षण कर सकते हैं और समुदायों के लाभ के लिए उनका उपयोग कर सकते हैं। पहला समाधान है उचित वन प्रबंधन का प्रयोग करना। यह समाधान वनों के स्वास्थ्य और सजीवता को बनाए रखने में मदद करता है, जिससे वे अपने प्राकृतिक फायदे प्रदान कर सकते हैं। इसमें वनों का पालन–पोषण, और बागवानी जैसी तकनीकियाँ शामिल होती हैं। दूसरा समाधान है वनों का पुनर्वास करना। यह उस स्थानीय वन्य जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए महत्वपूर्ण है जिसे कटाई के दौरान अदा नहीं किया जा सका। पुनर्वास के माध्यम से हम वन्य जीवन को बचाने में मदद करते हैं और उसकी प्रजातियों को संरक्षित रखते हैं। तीसरा समाधान है नए वनों की स्थापना करना। यह समाधान विकास के लिए नई जगहों पर वनों की स्थापना करने के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करता है। इससे हम न केवल वनों का संरक्षण करते हैं, बल्कि वातावरण के लिए भी एक सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इन समाधानों के अनुप्रयोग से हम स्थायी विकास के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों की भी सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं। इससे वातावरणीय संतुलन बना रहेगा और आने वाले पीढ़ियों के लिए स्वस्थ और सुरक्षित पर्यावरण का निर्माण होगा।

पर्यावरण संरक्षण

क्या हम सक्षम हैं कि हम विकास के साथ वनों का संरक्षण और पुनर्वास कर सकते हैं? वृक्षों की प्रकृति से हमारे अजेंडा का मेल खाना आवश्यक है, क्योंकि वृक्षों की कटाई न केवल हमारे वातावरण को बिगाड़ती है, बल्कि उसकी धरोहर को भी खतरे में डालती है। इसलिए, हमें सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारे विकास के साथ हम अपने प्राकृतिक संसाधनों को भी संरक्षित रखते हैं। वनों का

संरक्षण करने और पुनर्वास करने से हम न केवल अपने भविष्य को सुरक्षित करते हैं, बल्कि वास्तविक विकास की दिशा में भी प्राकृतिक समृद्धि को स्थापित करते हैं। पर्यावरण संरक्षण हमारे समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है। जिस तेजी से विकास की ओर हम अग्रसर हो रहे हैं, उसी तेजी से हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों की भी रक्षा करनी चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में, वनों का संरक्षण और पुनर्वास एक प्रमुख भूमिका निभाता है। वृक्षों और वनों का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है, और इनकी कटाई न केवल पर्यावरण को बिगाड़ती है, बल्कि हमारी प्राकृतिक धरोहर को भी खतरे में डालती है। वन हमें ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, जिससे हम जीवित रहते हैं। वे कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित कर वातावरण को शुद्ध करते हैं और जलवायु संतुलन बनाए रखते हैं। वनस्पति और जीव–जंतुओं की विविधता का संरक्षण भी इन्हीं वनों पर निर्भर करता है। जब हम वनों की कटाई करते हैं, तो हम इन सभी महत्वपूर्ण सेवाओं को खोने का जोखिम उठाते हैं।

विकास की दिशा में बढ़ते हुए, हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारी परियोजनाएँ और नीतियाँ पर्यावरण के अनुकूल हों। इसमें वनों का संरक्षण और पुनर्वास प्रमुख तत्व हैं। वनों का संरक्षण करने के लिए हमें निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए।

सख्त कानून और नितियाँः

सरकार को वन संरक्षण के लिए सख्त कानून बनाने चाहिए और उनका सख्ती से पालन करवाना चाहिए। वनों की अवैध कटाई पर रोक लगाने के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए।

वन पुनर्वास कार्यक्रमः

जहां–जहां वन नष्ट हो चुके हैं, वहां पुनर्वास कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। इसमें स्थानीय समुदायों को शामिल करना आवश्यक है ताकि वे भी वन संरक्षण में योगदान दे सकें।

वृक्षारोपण अभियानः

बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण अभियान चलाने की आवश्यकता है। इससे न केवल वन क्षेत्र बढ़ेगा, बल्कि पर्यावरण में भी सुधार होगा।

शिक्षा और जागरूकताः

लोगों को पर्यावरण संरक्षण के महत्व के बारे में जागरूक करना आवश्यक है। स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य करना चाहिए।

स्थानीय समुदायों की भागीदारीः

स्थानीय समुदायों को वन संरक्षण में शामिल करना आवश्यक है। उन्हें आर्थिक लाभ प्रदान करके वन संरक्षण के लिए प्रेरित किया जा सकता है। वनों का पुनर्वास भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना उनका संरक्षण। इससे न केवल वन्यजीवों का आवास संरक्षित रहता है, बल्कि स्थानीय समुदायों को भी आजीविका मिलती है। पुनर्वास कार्यक्रमों में न केवल वृक्षारोपण शामिल होता है, बल्कि वन्यजीवों के संरक्षण और उनकी जनसंख्या बढ़ाने के प्रयास भी किए जाते हैं। विकास और पर्यावरण संरक्षण एक–दूसरे के विरोधी नहीं हैं। यदि हम सही दृष्टिकोण अपनाएं, तो हम विकास के साथ–साथ अपने पर्यावरण को भी संरक्षित रख सकते हैं। वनों का संरक्षण और पुनर्वास करके हम न केवल अपने भविष्य को सुरक्षित करते हैं, बल्कि वास्तविक विकास की दिशा में भी प्राकृतिक समृद्धि को स्थापित करते हैं। हमें यह समझना होगा कि वृक्षों और वनों की रक्षा करके ही हम एक स्वस्थ और संतुलित पर्यावरण का निर्माण कर सकते हैं। इस प्रकार, पर्यावरण संरक्षण हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए, और इसके लिए हमें वनों के संरक्षण और पुनर्वास पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केवल तभी हम अपने और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित और स्वस्थ भविष्य सुनिश्चित कर सकते हैं।

आत्मविश्वास ही सफलता की कुंजी

श्रीमती पूंगोंदै कृष्णन
भा.वा.अ.शि.प.-वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर

आत्मविश्वास मन की उस स्थिति को संदर्भित करता है जहाँ व्यक्ति अपनी सीमाओं को लांघता है और अपने भीतर विश्वास को प्रोत्साहित करता है। आत्मविश्वास एक ऐसी कुंजी की तरह है जो हमारी क्षमता को खोलती है और हमें जीवन की चुनौतियों का सामना दृढ़ता और दृढ़ संकल्प के साथ करने में मदद करती है। यह हमारी अपनी क्षमताओं पर हमारा विश्वास है कि हम बाधाओं को दूर कर सकते हैं। आत्मविश्वास जीवन के विभिन्न पहलुओं में सफलता से निकटता से जुड़ा हुआ है। अध्ययनों से पता चला है कि जो व्यक्ति खुद पर और अपनी क्षमताओं पर विश्वास करते हैं, वे महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित करने और उन्हें प्राप्त करने की अधिक संभावना रखते हैं। उदाहरण के लिए, सफल उद्यमियों के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि 95% ने अपनी सफलता का श्रेय अपने उच्च स्तर के आत्मविश्वास को दिया।

आत्म-विश्वास का निर्माण

जबकि कुछ लोगों में स्वाभाविक रूप से आत्मविश्वास हो सकता है, यह एक ऐसा कौशल है जिसे विकसित और पोषित किया जा सकता है। प्राप्त करने योग्य लक्ष्य निर्धारित करना, सकारात्मक आत्म-चर्चा का अभ्यास करना आदि आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद कर सकती हैं। शिक्षा विशेषज्ञ छात्रों में आत्मविश्वास को बढ़ावा देने के महत्व पर जोर देते हैं ताकि उन्हें अकादमिक और सामाजिक रूप से उत्कृष्टता प्राप्त करने में मदद मिल सके। आत्मविश्वास विकसित करने के लिए, सबसे पहले यह देखना चाहिए कि उन्होंने अब तक क्या हासिल किया है। फिर, उन चीजों को कभी न भूलें जिनमें आप अच्छे हैं। हर किसी में ताकत और कमज़ोरी होती है, इसलिए अपनी ताकत पर ध्यान दें। कुछ लक्ष्य निर्धारित करें और कोई शौक भी अपनाएँ। अपने आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए खुद को प्रोत्साहित करें।

आत्मविश्वास का महत्व

आत्मविश्वास हमें अपनी असफलता का सामना करने और सकारात्मक दृष्टिकोण से उसे स्वीकार करने की अनुमति देता है। इसके अलावा, यह हमें कई गुना बढ़ने में मदद करता है। यह हमारे अंदर एक ऐसा गुण पैदा करने में मदद करता है जो यह सुनिश्चित करता है कि हम तब तक हार न मानें जब तक हम सफल न हो जाएं। जिन लोगों में आत्मविश्वास होता है, वे भाग्यशाली नहीं बल्कि होशियार होते हैं। वे सफलता पाने के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं रहते वे अपनी खुद की क्षमताओं पर भरोसा करते हैं।

आत्मविश्वास होना जरूरी है, लेकिन अति आत्मविश्वास से बचना भी जरूरी है। जैसा कि हम जानते हैं, किसी भी चीज़ की अधिकता हमारे लिए बुरी हो सकती है। जब आप अति आत्मविश्वासी हो जाते हैं, तो आप आलोचना को स्वीकार नहीं करते। जब आप ऐसा नहीं करते, तो आप खुद पर काम नहीं करते। इस प्रकार, यह आपकी तरक्की को रोक देता है। इन सब बातों को नज़रअंदाज़ करना नुकसानदेह साबित होगा। इसलिए संयम रखना आवश्यक है, जिससे आप सही मात्रा में आत्मविश्वास और आत्म-प्रेम प्राप्त कर सकें, जो आपको जीवन में सफलता और खुशी सुनिश्चित करेगा।

सफलता की कुंजी

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आत्मविश्वास सफलता की कुंजी है। अगर नहीं, तो यह निश्चित रूप से सफलता की ओर पहला कदम है। खुद पर भरोसा रखने के कारण बेहतर निर्णय लेने की प्रवृत्ति रखते हैं। यह जीवन में सफलता प्राप्त करने की आपकी संभावनाओं को बढ़ाता है। एक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अनुभव और निर्णय

से आत्मविश्वास प्राप्त करेगा। इसमें समय लगेगा लेकिन एक बार जब आप इसे हासिल कर लेंगे, तो आपको जीवन में हर ऊंचाई को जीतने से कोई नहीं रोक सकता।

चुनौतियों पर काबू पाना

जीवन चुनौतियों और असफलताओं से भरा है। हालाँकि, आत्मविश्वास हमें इन चुनौतियों का डटकर सामना करने की शक्ति देता है। जब हम खुद पर विश्वास करते हैं, तो हम दृढ़ रहने और कठिन समस्याओं का समाधान खोजने की अधिक संभावना रखते हैं। विशेषज्ञों की राय लचीलापन बनाने में आत्मविश्वास की भूमिका पर जोर देती है। मनोवैज्ञानिक सुझाव देते हैं कि आत्मविश्वास व्यक्तियों को प्रतिकूल परिस्थितियों से अधिक प्रभावी ढंग से उबरने में मदद करता है।

सकारात्मक आत्म–छवि

आत्मविश्वास का सकारात्मक आत्म–छवि से गहरा संबंध है। जब हमें खुद पर भरोसा होता है, तो हम खुद को अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं। यह आत्म–आश्वासन आत्म–सम्मान को बढ़ा सकता है और एक खुशहाल और अधिक संतुष्टिदायक जीवन की ओर ले जा सकता है। शोध के अनुसार, उच्च आत्मविश्वास वाले व्यक्ति अक्सर जीवन संतुष्टि के उच्च स्तर की रिपोर्ट करते हैं।

स्वस्थ रिश्ते

आत्मविश्वास दूसरों के साथ स्वस्थ संबंध बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब हम खुद पर विश्वास करते हैं, तो हम अपनी ज़रूरतों और सीमाओं को बेहतर तरीके से व्यक्त कर पाते हैं। इससे ज्यादा संतुलित और परस्पर सम्मानपूर्ण संबंध बनते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि आत्मविश्वास वाले व्यक्ति प्रभावी ढंग से संवाद करने और दूसरों के साथ मज़बूत संबंध बनाए रखने की अधिक संभावना रखते हैं।

शैक्षिक सफलता

आत्मविश्वास शैक्षणिक उपलब्धि में एक महत्वपूर्ण कारक है। जो छात्र अपनी क्षमताओं पर विश्वास करते हैं, वे स्कूल में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। वे कक्षा में होने वाली चर्चाओं में भाग लेने, ज़रूरत पड़ने पर मदद लेने और चुनौतीपूर्ण विषयों में दृढ़ता से भाग लेने की अधिक संभावना रखते हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि आत्मविश्वास और उच्च शैक्षणिक ग्रेड के बीच एक मजबूत संबंध है।

कैरियर प्रगति

पेशेवर दुनिया में, आत्मविश्वास एक मूल्यवान संपत्ति है। यह करियर में उन्नति और अवसरों की ओर ले जा सकता है। उच्च आत्मविश्वास वाले व्यक्ति अधिक मुखर होते हैं, नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए तैयार होते हैं, और कार्यस्थल की चुनौतियों से बेहतर तरीके से निपटते हैं। शोध से पता चला है कि आत्मविश्वासी कर्मचारियों को पदोन्नति मिलने और करियर में सफलता मिलने की अधिक संभावना होती है।

आत्मविश्वास वह आधार है जिस पर हम अपनी सफलता, खुशी और लचीलापन बनाते हैं। यह हमें चुनौतियों पर विजय पाने, स्वस्थ संबंध बनाए रखने और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की शक्ति देता है। यह शैक्षणिक और व्यावसायिक सेटिंग में एक मूल्यवान संपत्ति है, और यह एक सकारात्मक आत्म–छवि में योगदान देता है।

याद रखें कि आत्मविश्वास का मतलब परफेक्ट होना या कभी संदेह का सामना न करना नहीं है। इसका मतलब है खुद पर और अपनी क्षमताओं पर भरोसा करना, तब भी जब आपको असफलताओं का सामना करना पड़े। इसका मतलब यह जानना है कि आपके पास चुनौतियों का सामना करने की ताकत है और असफलताओं से उबरने की क्षमता है। इसलिए, अपने आत्मविश्वास को बढ़ाएं, महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित करें और अपनी क्षमता पर विश्वास करें। आत्मविश्वास को अपने सहयोगी के रूप में लेकर, आप अपने सपनों को हकीकत में बदलते हुए व्यक्तिगत विकास और सफलता की यात्रा पर निकल सकते हैं।

एल्डर आधारित पारंपरिक कृषि प्रणाली: जलवायु परिवर्तन के लिए एक प्रकृति-आधारित समाधान

डॉ. मनीष कुमार सिंह, डॉ. हंसराज
भा.वा.अ.शि.प.-सतत भूमि प्रबंधन उत्कृष्टता केंद्र, देहरादून

संक्षेप

पारंपरिक एल्डर (*अलनस नेपालेंसिस*) आधारित कृषि वानिकी प्रणाली भारत में नागालैंड राज्य की कुछ स्वदेशी जनजातियों जैसे अंगामी, चाखेसांग, चांग, यिमचुंगर और कोन्याक की एक सदियों पुरानी पारिस्थितिक कृषि पद्धति है। एल्डर एक पर्णपाती या अर्ध–पर्णपाती पेड़ है जो प्राकृतिक रूप से पूरे हिमालय में उगाया जाता है। खेती की इस प्रणाली में, फसलों को एल्डर के पेड़ों के साथ अंतरफसल के रूप में उगाया जाता है। एल्डर के साथ सह–खेती की गई कृषि फसलें, एक बहुत ही लाभकारी कृषि वानिकी प्रणाली बनाती हैं। एल्डर को उच्च मिट्टी की उर्वरता की आवश्यकता नहीं होती है और इसलिए, इस प्रणाली के माध्यम से बंजर भूमि को कृषि भूमि में परिवर्तित करना बहुत व्यावहारिक है। यह प्रणाली नागालैंड की स्वदेशी जनजातियों के बीच कई वर्षों के परीक्षण के माध्यम से विकसित भूमि उपयोग का एक उत्कृष्ट टिकाऊ मॉडल है। वर्तमान लेख नागालैंड में स्वदेशी एल्डर आधारित कृषि पद्धतियों का एक व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करता है।

परिचय

नागालैंड भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में स्थित सात राज्यों में से एक है। राज्य की आधी से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और 70% से अधिक आबादी का मुख्य व्यवसाय कृषि है। स्थानांतरण / झूम खेती, जो खेती की एक पुरानी पारंपरिक प्रणाली है, राज्य में व्यापक रूप से प्रचलित है। ऐसा माना जाता है कि झूम खेती का चलन लगभग 7000 ईसा पूर्व नवपाषाण काल जितना पुराना है। हालाँकि, झूमखेती से वनों की कटाई, जैव विविधता की हानि, आग आदि होती है और इसे खेती और भूमि प्रबंधन प्रयासों के लिए एक स्थायी दृष्टिकोण नहीं माना जाता है। पिछले कुछ वर्षों में, आदिवासी किसानों ने अपने सरल कौशल और अनुभवों के माध्यम से झूम खेती की एक अलग वैकल्पिक कृषि प्रणाली विकसित की है और ऐसी ही एक प्रणाली एल्डर–आधारित कृषि प्रणाली है (शर्मा और सिंह, 1994)। यह एल्डर (*अलनस नेपालेंसिस*) आधारित पारंपरिक कृषि प्रणाली, जो अपने नाइट्रोजन–फिक्सिंग गुणों और तेजी से विकसित होने के लिए जानी जाती है, का प्रचलन नागालैंड की स्वदेशी जनजातियों जैसे अंगामी, चाखेसांग, चांग, यिमचुंगर और कोन्याक द्वारा प्राचीन काल से किया जाता रहा है (केही एट अल, 2017)।

सामान्य विवरण

आदिवासी किसानों ने लंबे समय से एल्डर (*अलनस नेपालेंसिस*) के महत्व को पहचाना है जो एक गैर–फलीदार नाइट्रोजन फैक्सिंग वृक्ष प्रजाति है। एल्डर, बेटुलेसी कुल से संबंधित एक गैर–फलीदार पर्णपाती या अर्ध–पर्णपाती पेड़ है। यह पथरीली और परती भूमि पर तेजी से उपनिवेशीकरण करने वाला वृक्ष है जो अक्सर अस्थिर होती है। रूपात्मक रूप से, यह एक पर्णपाती या अर्ध–पर्णपाती पेड़ है, जिसका सीधा तना 30 मीटर तक की ऊंचाई और 60 सेमी के व्यास तक पहुंचता है, जो

आमतौर पर अधिक ऊंचाई पर पाया जाता है। नागालैंड की जलवायु इस वृक्ष प्रजाति के लिए बहुत उपयुक्त है। यह पेड़ सूरज की रोशनी में अच्छी तरह से पनपता है लेकिन इसे छायादार क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है। पत्तियां वैकल्पिक, सरल, उथले दांतेदार, प्रमुख शिराओं के साथ एक दूसरे के समानांतर, 7–16 सेमी लंबी और 5–10 सेमी चौड़ी होती हैं। फूल एकलिंगी होते हैं, मादा और नर फूल अलग–अलग पुष्पक्रमों में होते हैं जिन्हें कैटकिंस कहा जाता है। नर कैटकिंस भाग 10–25 सेमी लंबे, अंतिम पुष्पगुच्छों में लटके हुए होते हैं तथा मादा कैटकिंस भाग 1–2 सेमी लंबी, एक्सिलरी रेसमेम्स में 3–8 एक साथ होता है। एल्डर फल गहरे भूरे रंग के, 1.5–2 सेमी लंबे, छोटे डंठलों पर सीधे, अण्डाकार और लकड़ी के शल्क वाले होते हैं। बीज हल्के भूरे, गोलाकार, चपटे अखरोट, झिल्लीदार पंखों वाले होते हैं (फायरवुड क्रॉप्स, 1980; जोकर, 2000)।

पारंपरिक एल्डर कृषि प्रणाली के फायदे

इस प्रणाली में, कृषि फसलों की खेती एल्डर पेड़ों के साथ की जाती है और मिट्टी की उर्वरता को समृद्ध करने के लिए पेड़ के पत्तों के बायोमास की नियमित छंटाई की जाती है। फसलों के साथ मिलकर, पेड़ एक कृषि–वानिकी प्रणाली बनाता है जो ढलान वाली भूमि के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। इसके अलावा, मिट्टी में नाइट्रोजन मिलाने से गिरी हुई पत्तियाँ और शाखाएँ सड़ने के बाद फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम और अन्य पोषक तत्व मिट्टी में मिल जाती हैं। कोहिमा और फेक जिलों में किसान कृषि वानिकी दृष्टिकोण अपना रहे हैं, और अपनी धान की खेती में एल्डर पेड़ों को शामिल कर रहे हैं। एल्डर की तीव्र बढ़वार प्रचुर मात्रा में बायोमास प्रदान करती है, जिससे मिट्टी पोषक तत्वों से समृद्ध होती है। यह अंतरफसल के लिए एक प्रभावी फसल के रूप में भी काम करता है, इसके अतिरिक्त, हल्दी, सिनकोना और बड़ी इलाइची (*अमोमम सुबुलटम*) जैसी कुछ बागवानी फसलों के लिए एल्डर का उपयोग छायादार फसल के रूप में किया जाता है। सीढ़ीदार ढलानों पर, एल्डर पेड़ों को आमतौर पर डंडों के लिए काटा जाता है और धान, मक्का, जौ, मिर्च और कद्दू जैसी फसलों के साथ लगाया जाता है। मध्य हिमालय में, एल्डर पेड़ों के साथ बड़ी इलायची या सिनकोना की खेती करना एक आम बात है।

एल्डर प्रजातियाँ पर्यावरण संरक्षण और पुनर्वास प्रयासों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। एल्डर पेड़ों की खेती कटाव के प्रति संवेदनशील ढलानों पर मिट्टी को स्थिर करने और सतही अपवाह के परिणामस्वरूप होने वाले भूमि क्षरण को कम करने में सहायता करती है। इसके अतिरिक्त, एल्डर के पेड़ अपने अवशेषों के अपघटन के माध्यम से पोषक तत्वों के चक्रण की सुविधा प्रदान करते हैं, मिट्टी की उर्वरता को समृद्ध करते हैं और पारिस्थितिकी तंत्र उत्पादकता का बढ़ावा प्रदान करते हैं। अलनस पेड़ों द्वारा उत्पादित अवशेष, कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। वार्षिक अवशेषों का उत्पादन 3 से 6 टन प्रति हेक्टेयर तक होता है, जो नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम और कैल्शियम जैसे विभिन्न आवश्यक पोषक तत्वों का स्रोत है। पोषक तत्वों से भरपूर ये अवशेष न केवल मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है बल्कि वनस्पति विकास को भी बढ़ावा देता है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन और स्थिरता में योगदान होता है।

निष्कर्ष

एल्डर (*अलनस नेपालेंसिस*) आधारित इस कृषि वानिकी स्वदेशी प्रणाली ने झूम फसलों की पैदावार बढ़ाकर सकारात्मक प्रभाव दिखाया है। विशिष्ट क्षेत्रों में ऐसी प्रथाओं की व्यवस्थित पहचान और सत्यापन की तत्काल आवश्यकता है, इसके बाद उनके सुधार और स्थिरता को सुविधाजनक बनाने के लिए अन्य झूम क्षेत्रों में उन्हें व्यापक रूप से अपनाया जाना चाहिए।

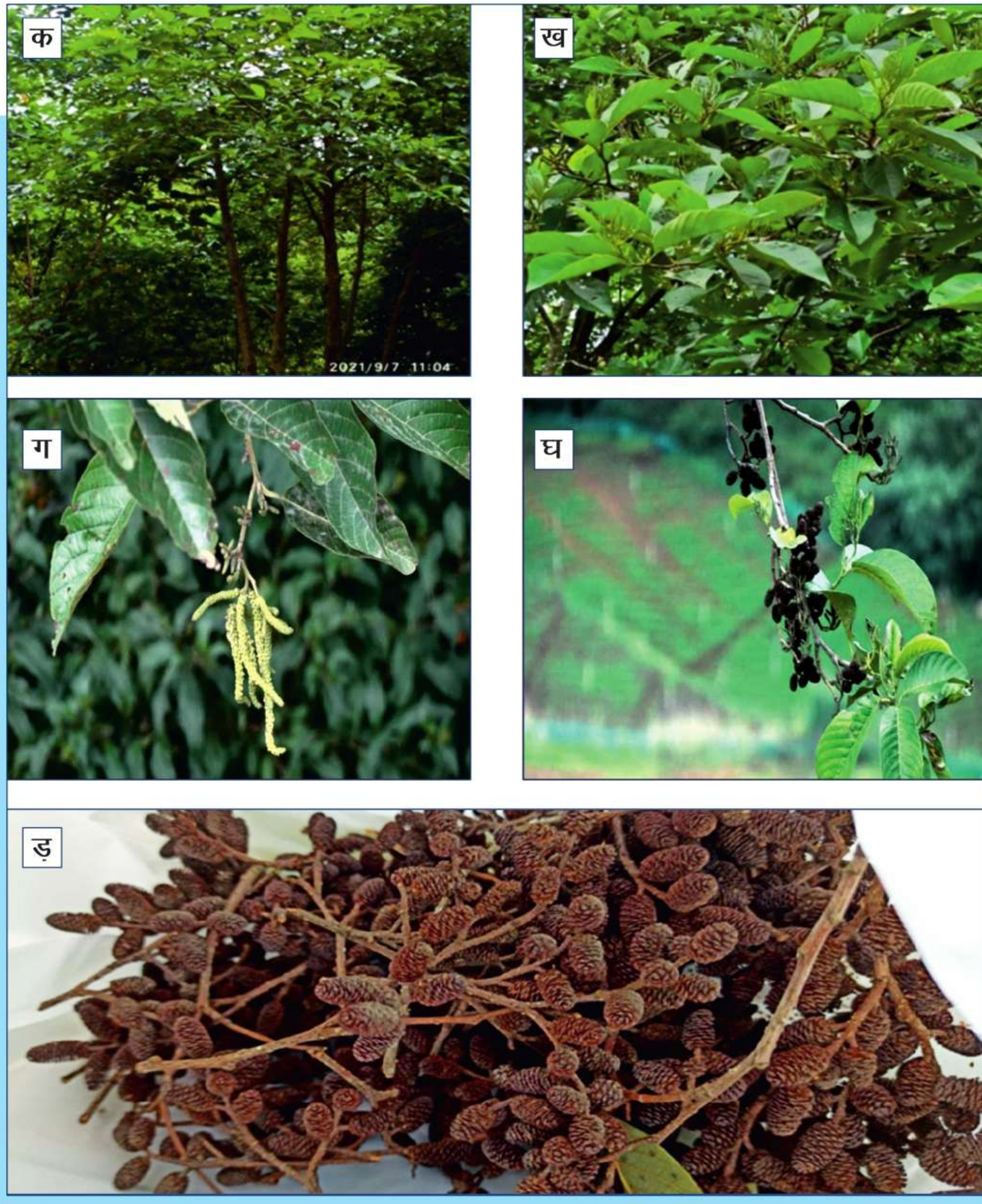

छाया चित्र.1
एल्डर का (क) वृक्ष, (ख) पत्ते, (ग) नर कैटिकंस, (घ) एवं (ड़) मादा कैटिकंस

खनन परियोजना में वन भूमि का गैर-वानिकी उपयोग का वनवासी समुदाय की आजीविका पर प्रभाव और समाधान के लिए अधिनियमों की भूमिका

श्री चन्द्र शर्मा,
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

प्रस्तावना

भारत के वन न केवल देश के पर्यावरणीय संतुलन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, बल्कि लाखों वनवासियों की आजीविका का आधार भी हैं। ये समुदाय, जो अक्सर आदिवासी होते हैं, अपने जीवन–निर्वाह, सांस्कृतिक प्रथाओं और आर्थिक गतिविधियों के लिए वनों पर निर्भर करते हैं। खनन गतिविधियों के लिए वनों का गैर–वानिकी उपयोग उनके जीवन के तरीके के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा पैदा करता हैं।

आर्थिक प्रभाव

1. आजीविका की हानिः

वन लकड़ी, गैर–लकड़ी वन उत्पाद (एन टी एफ पी) जैसे फल, मेवे और औषधीय पौधों जैसी कई प्रकार की संसाधन प्रदान करते हैं, जो वनवासियों की आर्थिक आजीविका के लिए महत्वपूर्ण हैं। खनन गतिविधियों के कारण वनों की कटाई होती है, जिससे इन संसाधनों की हानि होती है। परिणामस्वरूप, समुदाय अपनी मुख्य आय के स्रोत खो देते हैं और अक्सर गरीबी में धकेल दिए जाते हैं।

2. विस्थापन और भूमि की हानिः

खनन परियोजनाओं को ज्यादा जमीन की आवश्यकता होती हैं, जिससे वनवासी विस्थापित होते हैं। भूमि की हानि का अर्थ है कृषि गतिविधियों का नुकसान, जो उनकी आजीविका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। खनन कंपनियों द्वारा प्रदान किया गया मुआवजा अक्सर अपर्याप्त होता है और वन से प्राप्त होने वाले दीर्घकालिक लाभों से मेल नहीं खाता।

जंगल में साल के पेड़ की पत्तियों से प्लेट बनाती महिला

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

1. सामाजिक संरचना का विघटनः

खनन परियोजनाओं के कारण विस्थापन अक्सर वनवासियों की सामाजिक संरचना को तोड़ देता है। इन समुदायों का अपनी भूमि और वन के साथ गहरा संबंध होता है, जो उनकी सामाजिक पहचान और एक जुटता का हिस्सा होता है। विस्थापन इस संबंध को बाधित करता है, जिससे सामाजिक विघटन और सामुदायिक समर्थन प्रणाली हानि होती हैं।

2. सांस्कृतिक क्षरणः

वन न केवल आर्थिक संपत्ति हैं, बल्कि इन समुदायों के लिए सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्व भी रखते हैं। अनुष्ठान, परंपराएँ और त्यौहार अक्सर वन पारिस्थितिकी तंत्र से जुड़े होते हैं। खनन के लिए वनों का गैर– वानिकी उपयोग इन सांस्कृतिक प्रथाओं को नष्ट कर देता है और

धरोहर की हानि का कारण बनता है।

पर्यावरणीय प्रभाव

1. पारिस्थितिकीय सेवाओं का ह्रास:

वन जल प्रबंधन, मृदा संरक्षण और जलवायु प्रबंधन जैसी महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय सेवाएं प्रदान करते हैं। खनन गतिविधियों के कारण वनों की कटाई और भूमि का ह्रास होता है, जिससे ये सेवाएं कम हो जाती हैं। वनों के कवर की हानि के परिणामस्वरूप वर्षा में कमी , मृदा अपरदन में वृद्धि और प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अधिक संवेदनशीलता होती है, जो वनवासियों की आजीविका को सीधे प्रभावित करती है।

2. जैव विविधता की हानि:

वन जैव विविधता में समृद्ध होते हैं, जिन पर वनवासियों का भोजन, औषधि और अन्य आवश्यकताओं के लिए निर्भरता होती है। खनन के कारण आवास विनाश और जैव विविधता की हानि होती है, जिससे इन महत्वपूर्ण संसाधनों की उपलब्धता कम हो जाती है।

स्वास्थ्य प्रभाव

1. प्रदूषण और स्वास्थ्य जोखिम:

खनन गतिविधियों के कारण अक्सर वायु और जल प्रदूषण होता है, जो वनवासियों के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है। प्रदूषकों और भारी धातुओं के संपर्क में आने से श्वसन रोग, त्वचा की बीमारियाँ और अन्य स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। उचित स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं की कमी इन मुद्दों को और बढ़ा देती है।

2. मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं:

विस्थापन, आजीविका की हानि और सांस्कृतिक क्षरण से जुड़ा तनाव और आघात मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं जैसे अवसाद और चिंता का कारण बन सकता है।

समाधान और उपाय

1. सतत खनन प्रथाएं:

पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने और स्थानीय समुदायों को लाभ का उचित वितरण सुनिश्चित करने वाली सतत खनन प्रथाओं को अपनाना कुछ प्रतिकूल प्रभावों को कम कर सकता है। इसमें पुनर्वनीकरण प्रयास, उचित अपशिष्ट प्रबंधन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में समुदाय की भागीदारी शमिल है।

2. मुआवजा और पुनर्वास:

पर्याप्त मुआवजा और उचित पुनर्वास उपाय प्रदान करना, जिसमें वैकल्पिक आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच शामिल है, विस्थापित समुदायों को अपने जीवन का पुर्निर्माण करने में मदद कर सकता हैं।

3. कानूनी और नीति ढांचा:

वनवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनी और नीति ढांचे को मजबूत करना आवश्यक है। वन अधिकार अधिनियम, 2006 और पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 जैसे कानून लागू करना, जो वन भूमि पर आदिवासी समुदायों के अधिकारों को मान्यता देता है, उनकी सुरक्षा के लिए एक कानूनी आधार प्रदान कर सकता है।

वन अधिकार अधिनियम, 2006

अधिनियम का उद्देश्य वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों और अन्य पारंपरिक वन निवासियों को उनके अधिकार दिलाना है। अधिनियम के तहत:

1. वन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को व्यक्तिगत और सामुदायिक वन अधिकार दिए जाते हैं।
2. उन्हें वन संसाधनों का उपयोग और प्रबंधन करने का अधिकार मिलता है।
3. अधिनियम वन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की सहमति के बिना भूमि उपयोग परिवर्तन को रोकता है।

कार्यान्वयन में बाधाएँ

1. धीमी मान्यता:

अधिनियम के तहत अधिकारों की मान्यता की प्रक्रिया धीमी और जटिल है, जिससे कई समुदायों को उनके अधिकार समय पर नहीं मिल पाते।

2. प्रभावी निष्पादन की कमी:

अधिनियम के तहत दिए गए अधिकारों का प्रभावी निष्पादन नहीं हो पाता, जिससे वन भूमि का उपयोग

खनन के लिए किया जा सकता है।

3. संस्थागत समर्थन की कमी:

वन निवासियों और आदिवासी समुदायों को उनके अधिकारों की रक्षा के लिए पर्याप्त संस्थागत समर्थन नहीं मिलता।

पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 अधिनियम के तहत:

1. ग्राम सभाओं को जमीन का अधिग्रहण करने और उसका उपयोग बदलने का अधिकार है।
2. भूमि का हस्तांतरण ग्राम सभा की सहमति के बिना नहीं किया जा सकता।
3. इससे स्थानीय समुदायों की सहमति के बिना वन क्षेत्रों को खनन के लिए बदलना मुश्किल हो जाता है।

कार्यान्वयन में बाधाएँ

1. कमी का कार्यान्वयन:

कई राज्यों में अधिनियम को पूरी तरह से लागू नहीं किया गया है, जिससे ग्राम सभाओं और पंचायतों के अधिकार सीमित रह जाते हैं।

2. राजनीतिक और आर्थिक दबाव:

खनन परियोजनाओं में भारी आर्थिक और राजनीतिक हित शामिल होते हैं।

3. सूचना का अभाव:

ग्राम सभाओं को परियोजनाओं के दीर्घकालिक प्रभावों के बारे में पूरी जानकारी नहीं मिल पाती, जिससे वे सही निर्णय लेने में असमर्थ रहते हैं।

अन्य कारण

1. कानूनी चुनौतियाँ

खनन कंपनियां कानूनी प्राक्रिया का उपयोग करके भूमि अधिग्रहण और वन क्षेत्र विभाजन को चुनौती देती हैं और अक्सर सफल हो जाती हैं।

2. प्रभावी निगरानी की कमी:

वन क्षेत्रों में खनन गतिविधियों पर निगरानी और नियंत्रण का अभाव रहता है, जिससे अवैध खनन हो सकता है।

अनुशंसाएं

अधिनियमों में सुधार की आवश्यकता है ताकि वे अधिक प्रभावी रूप से स्थानीय समुदायों के अधिकारों की रक्षा कर सकें और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित कर सकें। अनुशंसाएँ निम्नलिखित हैः

1. समुदाय की भागीदारी:

निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्थानीय समुदायों की अधिक भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि उनकी सहमति और भागीदारी को महत्व दिया जा सके।

2. सशक्तिकरण:

ग्राम सभाओं और वन निवासियों को उनकी भूमि और संसाधनों के प्रबंधन के लिए और अधिक सशक्त किया जाना चाहिए।

3. पारदर्शिता:

भूमि अधिग्रहण और उपयोग परिवर्तन की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाया जाना चाहिए ताकि स्थानीय समुदायों को विश्वास में लिया जा सके।

4. वैकल्पिक रोजगार:

स्थानीय समुदायों के लिए वैकल्पिक रोजगार के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि वे खनन परियोजनाओं से प्रभावित न हों।

5. संवेदनशीलता:

खनन के पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए संवेदनशील और जिम्मेदार खनन प्रथाओं को अपनाया जाना चाहिए।

समाज और सरकार दोनों को मिलकर वन अधिकार अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना चाहिए, ताकि वनवासियों की आजीविका और पर्यावरण दोनों को संरक्षित किया जा सके।

गृह वाटिका एवं इसका महत्व

डॉ. जोगिन्द्र सिंह चौहान, श्री कुलवन्त राय गुलशन
भा.वा.अ.शि.प.–हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

पेड़ हमारे लिए हवा, पानी और मिट्टी को अच्छा और स्वच्छ बनाते हैं, और मूल रूप से पृथ्वी को रहने योग्य बनाते हैं। पेड़ों से समृद्ध वातावरण में रहने से हमारे स्वस्थ, तंदरुस्त और खुश रहने की संभावना बढ़ जाती है। व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए घर के आसपास, प्रांगण अथवा छत पर खुली जगह में फल, फूल, सब्जियाँ तथा औषधीय पौधों की बगिया को गृह वाटिका कहा जाता है। इसे रसोई वाटिका, पोषण वाटिका, किचन गार्डन के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रयोजन रसोईघर के पानी व कूड़ा करकट का इस्तेमाल करके फल व साग सब्जियों की दैनिक जरूरतों को पूरा करना है। गृह वाटिका को निम्न स्थानों पर विकसित किया जा सकता है:

- घर के नजदीक, आसपास खाली जमीन पर।
- आँगन, छत, बालकनी या खिड़की पर गमलों में।
- आँगन में घर की चारदीवारी या बालकनी की दीवार, बाड़, छत, बालकनी या खिड़की पर गमलों में वर्टिकल गार्डनिंग के रूप में।
- छत, बालकनी या खिड़की पर गमलों में या हैंगिंग कंटेनर्स गार्डनिंग के रूप में।

गृह वाटिका के लिए स्थान का चयन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक है:

- जहाँ सुबह की धूप और रोजाना लगभग 6 से 8 घंटे सीधी धूप मिलती है। तेजी से और अच्छी तरह से बढ़ने के लिए, सब्जियों को जितना संभव हो उतना सौर प्रकाश की आवश्यकता होती है।
- यदि पर्याप्त धूप वाला स्थान नहीं मिल पाता है, तो छाया में उगने वाली सब्जियों और फलों को भी उगाया जा सकता है।
- तेज हवा से सुरक्षित रखने के लिए उचित व्यवस्था होनी चाहिए।
- पौधे के आकार और वृद्धि के आधार पर गमले, ग्रो बैग या स्थान का चयन करना चाहिए।
- गमले या ग्रो बैग में उचित जल निकासी के लिए उपयुक्त प्रबंध करना चाहिए।

गृह वाटिका का प्रबंधन:

- गृह वाटिका विकसित करने के लिए सबसे पहले योजना बनाएं कि कौन से पौधे कब और कहां लगाने हैं।
- पौधों के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली मिट्टी का चयन करना चाहिए तथा जैविक खाद (कम्पोस्ट) और गोबर की खाद मिलाकर मिट्टी की उर्वरता सुनिश्चित करनी चाहिए।
- गृह वाटिका की उत्पादकता बढ़ाने के लिए विविधता का ध्यान रखते हुए सब्जियों, फलों, और फूलों के पौधे उगाने चाहिए तथा क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल मौसमी पौधों का चयन करना चाहिए।
- पौधों की आवश्यकता के अनुसार नियमित रूप से सिंचाई करनी चाहिए। पानी की अधिकता एवं कमी दोनों ही पौधों के लिए नुकसानदेह है। सुबह या शाम के समय पानी देना सबसे अच्छा होता है। धूप में सिंचाई नहीं करनी चाहिए।
- जैविक खाद को हर 2–3 महीने में डालना चाहिए ताकि पौधों को निरंतर पोषक तत्व मिलते रहें।

- पौधों की नियमित जांच करनी चाहिए और यदि कीट या बीमारी के लक्षण दिखें तो तुरंत उचित समाधान करना चाहिए। जैविक कीटनाशकों के उपयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि रासायनिक प्रभाव से बचा जा सके।
- खरपतवार नियमित रूप से निकालना चाहिए अन्यथा खरपतवार पोषक तत्वों और धूप के लिए पौधों से स्पर्धा करेंगे और उत्पादकता को कम करेंगे।
- समय–समय पर पौधों की कटाई और प्रूनिंग करते रहें ताकि नूतन और स्वस्थ विकास को प्रोत्साहन मिले।

गृह वाटिका में क्या-क्या उगाएँ

गृह वाटिका में फल, फूल, औषधीय पौधे तथा सब्जियाँ लगाए जा सकते हैं। यदि खुला क्षेत्र उपलब्ध है तो उगाने वाली वनस्पतियों की कोई सीमा नहीं है। फल वाले पेड़ जैसे पपीता, नींबू व अमरूद आदि भी सब्जियों के साथ–साथ उगाए जा सकते हैं। परंतु अगर पर्याप्त खुला स्थान नहीं है, तो आप सीमित तरीके से नित्य प्रयोग होने वाली अथवा आवश्यक दुर्लभ वनस्पतियों जैसे कि तिमिर (*जैंथोक्सिलम आर्मेटम*), सहजन (*मोरिंगा ओलीफेरा*), कड़ी–पत्ता (*मुरैया कोएनिगी*), गुलाब (*रोजा प्रजाति*), तुलसी (*ओसीमम सैंक्टम*), पुदीना (*मेंथा प्रजाति*), लेमन ग्रास (*सिंबोपोगोन सिट्रेटस*), घृत कुमारी (*एलो बारबाडेंसिस*) इत्यादि को गृह–वाटिका में उगा सकते हैं। इसके अलावा क्यारियों की मेंड़ों पर मूली (*राफानस सैटिवस*), गाजर (*डौकस कैरोटा*), शलजम (*ब्रैसिका रैपा*), चुकन्दर (*बीटा वल्गरिस*), धनिया (*कोरिएंड्रम सैटिवम*), मिर्च (*कैप्सिकम प्रजाति*), प्याज (*एलियम सेपा*) व हरे साग इत्यादि उगा सकते हैं। बेल वाली सब्जियों जैसे कि लौकी (*लेगनेरिया सिसेरिया*), तुरई (*लूफा एक्यूटेंगुला*), कद्दू (*कुकुरबिटा पेपो*), परवल (*ट्राइकोसैंथेस डियोइका*), करेला (*मोमोर्डिका चारेंटिया*), खीरा (*कुकुमिस सैटिवस*) आदि को बाड़ के रूप में किनारों पर ही लगाना चाहिए। वाटिका में पपीता (*कैरिका पपाया*), अनार (*पुनिका ग्रेनेटम*), नींबू (*साइट्रस लिमोन*), केला (*मूसा पैराडाइसियाका*), अंगूर (*वाइटिस विनिफेरा*), अमरुद (*सीडियम गुआजावा*) इत्यादि के पौधों को सघन विधि से इस प्रकार किनारे की तरफ लगाना चाहिए, कि सब्जियों पर छाया न पड़े और पोषक तत्त्वों के लिए मुकाबला न हो। गृह वाटिका को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए उस में कुछ सजावटी पौधे भी लगाए जा सकते हैं।

गृह वाटिका के लाभ:

1. गृह वाटिका से ताजा हवा, फल, फूल व सब्जियां प्राप्त होती हैं तथा साथ ही वाटिका में कार्य करने से व्यायाम भी होता है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य सुधरता है और मन भी शांत होता है।
2. गृह वाटिका में फल सब्जियाँ उगा कर उन पर होने वाले खर्च में कटौती कर सकते हैं। परंतु इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ न होकर घर में ही ताजी सब्जी एवं आवश्यक वनस्पति का उत्पादन कर जरूरत के समय उसकी उपलब्धता सुनिश्चित करना होता है।
3. अगर सब्जियां खरीदने के लिए बाजार में जाने का समय ना लगे अथवा किसी औषधीय जड़ी–बूटी की आवश्यकता पड़ जाये, तो गृह वाटिका से सहज ही व्यवस्था हो सकती है एवं पैसा और समय भी बचेगा।
4. बाजार में उपलब्ध सब्जियों को रसायनिक खाद,

खरपतवार नाशक, कीटनाशक, जीवाणुरोधी एवं फफूँदरोधी रसायनों का उपयोग कर उगाया जाता है तथा उन्हे आकर्षक बनाने के लिए नकली रंग, मोम की पर्त व रसायनों का प्रयोग किया जाता है और उनमें संक्रामक रोगों के जीवाणुओं की उपस्थिति की संभावना भी होती है, जिससे हमारे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। बाजार में ताजी सब्जियाँ उपलब्ध भी नहीं हो पाती। गृह वाटिका में तैयार फल – सब्जियां चाहे हमारी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति न कर पाये परन्तु रसायनों के उपयोग से तैयार फल–सब्जियों पर हमारी निर्भरता को कम करती है।

5. घरेलू कार्यों में प्रयुक्त हो चुके जल का गृह वाटिका में उग रहे पौधों की सिंचाई में सदुपयोग हो सकता है एवं घर के कूड़े–करकट, नाली का कचरा, भूसा, सूखी पत्तियाँ, आदि का बैक्टीरिया, फँजाई एवं केंचुआ द्वारा विघटन करके कम्पोस्ट खाद बना कर प्रयोग किया जा सकता है।
6. घर के आस–पास की खाली भूमि का सदुपयोग हो जाता है।
7. गृह वाटिका लकड़ी के डिब्बों, गमलों, बेकार टिनों एवं मकान की छतों पर सफलतापूर्वक उगाई जा सकती। इसे एक मन भावन शौक के रूप में अपनाया जा सकता है।

गृह वाटिका लगाने से व्यक्तिगत, पारिवारिक और पर्यावरणीय लाभ प्राप्त होते हैं। इससे न केवल ताजे और पौष्टिक खाद्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं, बल्कि यह मानसिक शांति, आर्थिक बचत, और पारिवारिक जुड़ाव भी बढ़ाती है। घर में उगाई गई सब्जियाँ और फल ताजे और अधिक पौष्टिक होते हैं। घर में सब्जियाँ और फल उगाने से बाजार से खरीदने की आवश्यकता कम हो जाती है, जिससे पैसे की बचत होती है। घर में सब्जियाँ और फल जैविक रूप से उगा सकते हैं, जिससे रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग से बचा जा सकता है। जिससे स्वास्थ्य लाभ होगा एवं पर्यावरण को कम हानि पहुंचेगी। घर में बागवानी करने से परिवार के सदस्यों के बीच जुड़ाव बढ़ता है और एक साथ समय बिताने का अच्छा अवसर मिलता है। गृह वाटिका से घर की सुंदरता बढ़ती है और एक सुखद वातावरण बनता है। अपने भोजन का कुछ हिस्सा खुद उगाने से आत्मनिर्भरता बढ़ती है और यह एक संतोषजनक अनुभव होता है। गृह वाटिका पर्यावरण को संरक्षित करने में सहायक होती है और घर के आसपास के वातावरण को सुंदर और हरा–भरा बनाती है। संक्षेप में, गृह वाटिका एक स्वस्थ, स्वावलंबी और खुशहाल जीवन शैली की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

ट्रीजीनी- भा.वा.अ.शि.प – व.आ.वृ.प्र.सं. की एक अंतर सक्रिय डिजिटल प्लेटफॉर्म पहल

डॉ. एस. सरवणन, श्री पी. चंद्रशेखरन, श्रीमती आर. जी. अनीता
भा.वा.अ.शि.प.– वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर

वर्तमान में वृक्षारोपण वानिकी/कृषि वानिकी की जानकारी कई प्लेटफार्मों में अलग–अलग रूप में उपलब्ध है। डेटा को एकीकृत करने और अधिक सुलभ बनाने की अनिवार्य आवश्यकता मौजूद है। एक साझा आभासी मंच पर कई हितधारकों को एकीकृत करने से सभी हितधारकों के बीच वृक्षारोपण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण लाने का मार्ग प्रशस्त होगाा। यह लकड़ी की आपूर्ति एवं मांग और इसकी खरीद पर मुक्त प्रवाह वाली बाजार जानकारी प्रक्रिया में अंतराल को दूर करने में मदद करेगी।

भा.वा.अ.शि.प.–व.आ.वृ.प्र.सं. तमिलनाडु के वृक्ष उत्पादकों और अन्य हितधारकों के लिए डिजिटल अंतर सक्रीय प्लेटफॉर्म का विकास और लोकप्रियकरण नामक एक विस्तार परियोजना को निष्पादित किया। इस डिजिटल प्लेटफॉर्म में पेड़ उगााने वालों के लिए मोबाइल एप्लिकेशन, एक वेब पोर्टल, एसएमएस संचार प्रणाली, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री आपूर्तिकर्ता, उद्योग, अनुसंधान संस्थान और राज्य वन विभाग शामिल हैं, जो पेड़ उत्पादकों के लाभ के लिए अनुसंधान और बाजारों पर सूचना प्रवाह को एकीकृत करते हैं। यह मंच विशेष रूप से कृषि भूमि में कृषि आय और वृक्षों के आवरण के तहत क्षेत्र बढ़ाने के दोहरे उद्देश्य के साथ वनों के बाहर पेड़ों को लोकप्रिय बनाने के लिए सूचना, संचार और प्रौद्योगिकी (आईसीटी) को एकीकृत करने की अपार संभावनाओं का पता लगाने का प्रयास करता है।

ट्रीजीनी- एक अंतर सक्रीय डिजिटल प्लेटफॉर्म

ट्रीजीनी भा.वा.अ.शि.प – व.आ.वृ.प्र.सं द्वारा विकसित एक डिजिटल प्लेटफॉर्म है जो सभी हितधारकों को एक साझा मंच से जोड़ता है और हितधारकों जैसे पेड़ उगाने वाले, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री (क्यूपीएम) प्रचारक और नर्सरी उत्पादक, अनुसंधान संस्थान/वैज्ञानिक, राज्य वन विभाग और लकड़ी आधारित उद्योग और व्यापारियों की जरूरतों को पूरा करता है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म का दायरा

ऊपर उल्लिखित सभी हितधारकों को जोड़ने के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म में मोबाइल एप्लिकेशन, वेब पोर्टल और वेबसाइट शामिल हैं। पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ट्रीजिनी को एक अखिल भारतीय पोर्टल के रूप में विस्तारित करने और इसे बहुभाषी आईसीटी प्लेटफॉर्म में अपग्रेड करने की योजना बना रहा है।

विशेषता सूची

सॉफ्टवेयर प्लेटफॉर्म में निम्नलिखित घटक होते हैं। सामान्य विशेषताएं नीचे दी गई हैं।

1. मोबाइल एप्लिकेशनः

अ. वृक्ष पारिस्थितिकी तंत्र हितधारकों के लिए सामान्य और विशिष्ट जानकारी।

आ. अधिकृत हितधारक हितधारक विशिष्ट सामग्री का उपयोग कर सकते हैं।

इ. अधिकृत हितधारक प्रासंगिक जानकारी प्रकाशित कर सकते हैं, उदाहरण के लिए क्यूपीएम प्रचारक क्लोन उपलब्धता प्रकाशित कर सकते हैं, अनुसंधान संस्थान प्रजनन सामग्री की उपलब्धता आदि प्रकाशित कर सकते हैं।

2. वेबसाइटः

अ. पारिस्थितिक तंत्र हितधारकों के लिए सामान्य जानकारी।

आ. व.आ.वृ.प्र.सं सामग्री प्रबंधक द्वारा प्रबंधित वेबसाइट सामग्री।

इ. सूचनात्मक मीडिया, प्रासंगिक लिंक, उद्योग अद्यतन, समाचार, सरकारी योजनाएं, वैज्ञानिकों से सलाह, हितधारकों की निर्देशिका, अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न आदि प्रदान करता है।

3. वेब पोर्टलः

अ. व.आ.वृ.प्र.सं के लिए सामग्री का प्रबंधन करने, रिपोर्ट तैयार करने, डेटा विजुअलाइज़ेशन करने के लिए व्यवस्थापन प्रणाली।

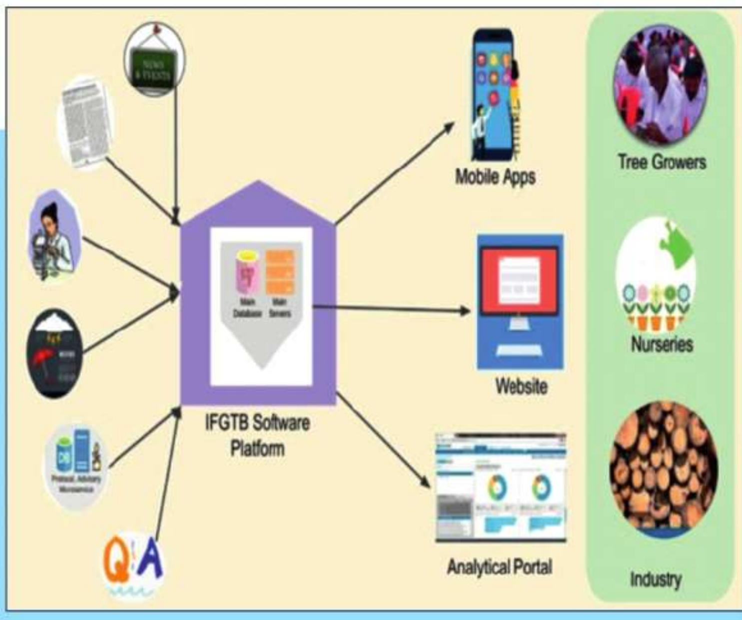

ट्रीजीनी एप का होमस्क्रीन **विभिन्न घटकों में कार्यक्षमता**

ट्री जिनी अगली पीढ़ी के विस्तार की दिशा में एक प्रयास है। इसे गूगल प्ले स्टोर (एंड्रॉयड और आईओएस वर्जन) से आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है।

बर्लवुड ब्लैक मार्केट: भारत में पेड़ों के लिए एक नया खतरा

श्री लोकेंदर शर्मा
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

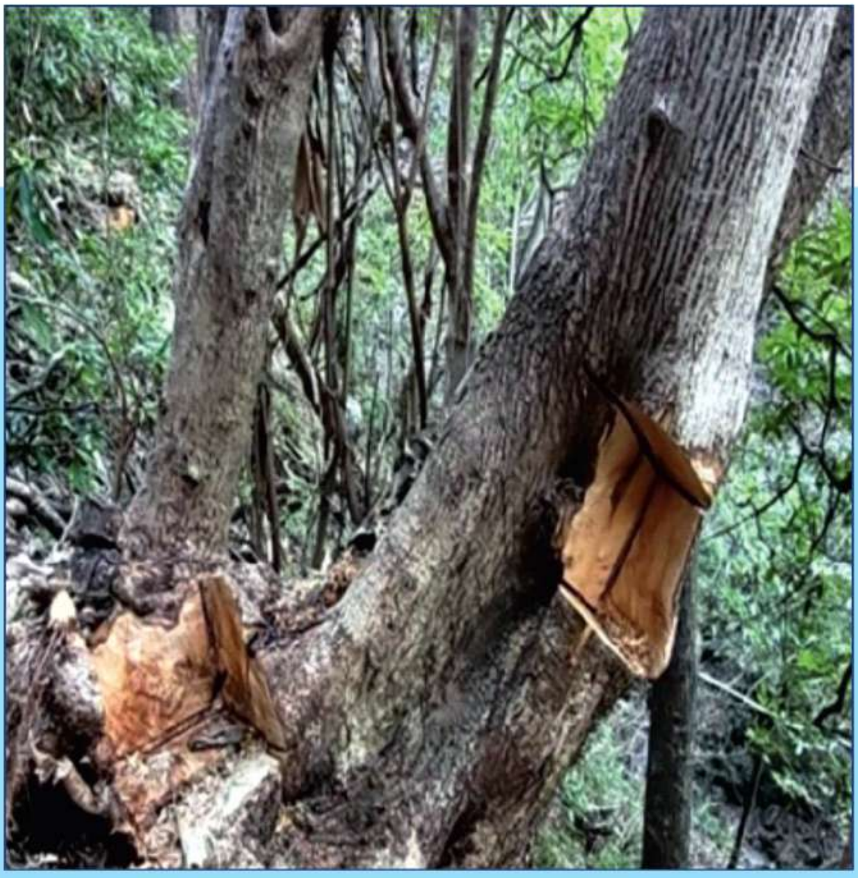

बर्लवुड की अवैध कटाई के बाद मेपल के पेड़ पर बने निशान

परिचय

अवैध वन्यजीव व्यापार का मूल्य 7–23 बिलियन डॉलर प्रति वर्ष आंका गया है। व्यापार में लकड़ी दुनिया की सबसे मूल्यवान वन्यजीव वस्तु है और एफ.ए.ओ, 2021 के अनुसार दुनिया में लकड़ी वन उत्पादों के वैश्विक निर्यात का कुल मूल्य 244 बिलियन डॉलर होने का अनुमान है। इसके अलावा 30% प्रजातियों का विश्व स्तर पर जंगली–स्रोत के रूप में व्यापार किया जाता है (साइट्स 2022)। हाल ही में चंबा वन प्रभाग, हिमाचल प्रदेश के अधिकारियों ने लगभग 1330 मेपल कटोरे और बर्लवुड के टुकड़ों के साथ 15 लोगों को गिरफ्तार किया है। हालांकि, मेपल बर्ल का अवैध शिकार सिर्फ हिमशैल का एक टुकड़ा मात्र हो सकता है क्योंकि हिमालयी क्षेत्र में विभिन्न अन्य बर्ल बनाने वाले पेड़ उपलब्ध हैं। बर्ल वुड, एक अत्यधिक बेशकीमती सामग्री है जो अपने उत्कृष्ट पैटर्न और समृद्ध रंगों के लिए पसंद की जाती है। इसका गठन एक आकर्षक घटना है, जो दुनिया भर में विभिन्न वृक्ष प्रजातियों में पायी जाती है। अपनी सौंदर्यता के अलावा, बर्ल वुड सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पारिस्थितिक महत्व रखती है। इस लेख का उद्देश्य बर्ल लकड़ी की जटिलताओं का पता लगाना, इसके गठन, विशेषताओं, उपयोग और पारिस्थितिक महत्व पर प्रकाश डालना है।

बर्लवुड का निर्माण

बर्ल वुड विभिन्न कारकों के परिणामस्वरूप विकसित होती है, जिसमें एक पेड़ के भीतर आनुवंशिक उत्परिवर्तन, तनाव, चोट या संक्रमण शामिल है। अनियमित वृद्धि पैटर्न असामान्य ऊतक के निर्माण की ओर ले जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप विशिष्ट घुमाव, गांठें और अनियमितताएं पाई जाती हैं। हालाँकि बर्ल बनने का सटीक तंत्र पूरी तरह से समझा नहीं गया है, यह अक्सर तने के आधार के पास या जड़ प्रणाली के भीतर होता है। कवक, बैक्टीरिया, कीड़े या शारीरिक क्षति जैसे पर्यावरणीय तनाव बर्ल के

मेपल बर्लवुड से बना कटोरा

विकास को गति दे सकते हैं और प्रतिक्रिया में पेड़ असामान्य वृद्धि पैदा कर सकता है।

बर्लवुड की विशेषताएँ

बर्ल लकड़ी प्रतिरूप, रंग और बनावट की एक विविध श्रृंखला प्रदर्शित करती है, जिससे प्रत्येक टुकड़ा अद्वितीय और अत्यधिक मांग वाला हो जाता है। अनियमित वृद्धि के कारण घूमते ऊतक के प्रतिरूप, एक मंत्रमुग्ध कर देने वाला दृश्य आकर्षण पैदा करते हैं। पेड़ की प्रजातियों और पर्यावरणीय कारकों के आधार पर बर्ल लकड़ी के रंग व्यापक रूप से भिन्न हो सकते हैं, गहरे भूरे और लाल से लेकर जीवंत पीले और नारंगी तक। इसकी कठोरता, घनत्व और व्यावहारिकता इसे एक लकड़ी के काम से लेकर सजावटी कला तक विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए उपयुक्त बनाती है।

बर्लवुड की अवैध कटाई

भारत में अधिकांश जंगल सरकार के स्वामित्व में हैं, और भारत में बर्लवुड बनाने वाली मेपल और ओक जैसी प्रजातियाँ केवल वन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। शिकारी आम तौर पर पेड़ के नीचे पाए जाने वाले बोझ के हिस्से को काट देते हैं। फिर इन कच्चे बर्ल को नक्काशी स्थलों पर ले जाया जाता है, जहां इन बर्ल से सजावटी कला और मूर्तिकला बनाई जाती है, जिन्हें कटोरे और मूर्तियों से लेकर परिवर्तित वस्तुओं और आभूषणों तक विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया जाता है। बर्ल की प्रजाति और आकार के आधार पर बर्लवुड का मूल्य USD +75 से +6953 तक हो सकता है।

बर्लवुड की कटाई से उत्पन्न खतरे

बर्ल वुड का आकर्षण न केवल इसकी सौंदर्यात्मक अपील में बल्कि इसकी कमी में भी निहित है। बर्ल संरचनाएँ अपेक्षाकृत दुर्लभ हैं, जो मेपल, ओक, रेडवुड और अखरोट जैसी कुछ पेड़ प्रजातियों में छिटपुट रूप से होती हैं। शिकारी अब विशेष रूप से बर्लवुड बनाने वाली इन प्रजातियों को निशाना बना रहे हैं। इन बर्लवुड्स में एक सुप्त कली होती है, जो पुराने मूल वृक्ष के नष्ट होने पर एक नए पेड़ के रूप में पुनर्जीवित हो जाती है। बर्लवुड में सामान्य शाखा की लकड़ी के समान प्रतिक्रिया रसायन नहीं होते हैं, इसलिए पेड़ के कटे हुए बर्ल का उभरा हुआ हिस्सा कभी बंद नहीं हो सकता है। आप लकड़ी के ऊतकों से बने एक गठरी के आकार के घाव के साथ रह जाएंगे जो कई मौसमों के लिए कीटों और रोगजनकों के लिए खुला रहेगा। भविष्य में ये पेड़ महामारी के हॉटस्पॉट के रूप में उभर सकते हैं, जो अंततः उस जंगल के अंदर सभी स्वस्थ/ दुर्लभ/ लुप्तप्राय वनस्पतियों को प्रभावित कर सकता है।

बर्लवुड का उपयोग

बर्ल वुड की लकड़ी का उपयोग फर्नीचर निर्माण, उपकरण निर्माण और सजावटी कला सहित विभिन्न क्षेत्रो में किया जाता है। इनके अनूठे पैटर्न और रंग इसे अद्वितीय सुंदरता के साथ एक तरह की उत्कृष्ट कृतियां बनाने के लिए अत्याधिक वांछनीय बनाते हैं। फर्नीचर बनाने में, बर्ल लकड़ी का उपयोग अक्सर टेगलटॉप, विनीर्स और सजावटी टुकड़ो के लिए किया जाता है, जो तैयार उत्पाद में विलासिता और परिष्कार का स्पर्श जोड़ता है। संगीत वाद्ययंत्रों के क्षेत्र में, बर्ल वुड को उसके ध्वनिक गुणों और सौंदर्य अपील के लिए बेशकीमती माना जाता है, जिसका उपयोग गिटार,

वायलिन और अन्य तार वाले वाद्ययंत्रों के निर्माण में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, बर्ल की लकड़ी को सजावटी कला और मूर्तिकला में महत्व दिया जाता है, जहां इसकी प्राकृतिक सुंदरता को विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया जाता है, कटोरे और मूर्तियों से लेकर वस्तुओं और आभूषणों तक।

पारिस्थितिक महत्व

पारिस्थितिक दृष्टिकोण से, बर्लवुड वन पारिस्थितिक प्रणालियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालॉकि शुरूआत में बर्ल के गठन को विकृति या असामानय वृद्धि के रूप में माना जा सकता हैं। लेकिन यह पेड़ों के लचीलेपन और अनुकूलनशीलता के लिए एक प्रमाण पत्र के रूप में कार्य करता है। बर्ल कीड़े, पक्षियों और छोटे स्तनधारियों सहित विभिन्न जीवों के लिए आवास और आश्रय प्रदान करते हैं, जो वन पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर जैव विविधता में योगदान करते हैं। इसके अलावा, बर्ल पोषक तत्वों के चक्रण और मिट्टी को कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध करते हैं और आसपास की वनस्पति के विकास को बढ़ावा देते हैं।

सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व

पूरे इतिहास में, बर्ल की लकड़ी का कई समाजों में सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक महत्व रहा है। प्राचीन समय में, बर्ल की लकड़ी को उसकी दुर्लभता और कथित रहस्यमय गुणों के लिए बेशकीमती माना जाता था, जो अक्सर रॉयल्टी और कुलीन वर्ग के लिए आरक्षित होती थी। इसके जटिल पैटर्न और प्राकृतिक सुंदरता को कला, शिल्प कौशल और धार्मिक समारोहों में सम्मानित किया जाता था। आज, बर्ल की लकड़ी विस्मय और प्रशंसा की भावना पैदा कर रही है, जो समकालीन कलाकारों और कारीगरों को कला के कालातीत कार्यों को बनाने के लिए प्रेरित करते हुए अतीत की एक कड़ी के रूप में काम कर रही है।

निष्कर्ष

बर्ल वुड प्रकृति के चमत्कारों के प्रमाण के रूप में खड़ी है, जो पेड़ों की जटिल सुंदरता और लचीलेपन की झलक पेश करती है। इसका गठन, विशेषताएं और उपयोग प्रकृति और मानव रचनात्मकता के बीच गहन अंतरसंबंध को रेखांकित करते हैं। जिस प्रकार हम बर्ल वुड के चमत्कारों का पता लगाना और उसकी सराहना करना जारी रखते हैं, आइए हम अपने जंगलों को संरक्षित करने और बनाए रखने के महत्व को भी पहचानें, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि आने वाली पीढ़ियां प्रकृति की उत्कृष्ट कृतियों को देखना जारी रख सकें।

माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण: वर्तमान परिप्रेक्ष्य और समाधान

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
भा.वा.अ.शि.प.- उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

परिचय

प्लास्टिक प्रदूषण संकट की सबसे हानिकारक और दीर्घकालिक विरासतों में से एक माइक्रोप्लास्टिक है, जो मानव और ग्रह के स्वास्थ्य के लिए एक बढ़ता हुआ खतरा है। ये छोटे प्लास्टिक कण सिगरेट, कपड़े और सौंदर्य प्रसाधनों सहित रोज़मर्रा की चीज़ों में मौजूद होते हैं। माइक्रोप्लास्टिक, प्लास्टिक के छोटे टुकड़े होते हैं, जिनका आकार आमतौर पर 5 मिमी से छोटा होता है। ये स्थायी और बहुत गतिशील होते हैं, और प्रकृति से इन्हें निकालना अत्यंत कठिन होता है। माइक्रोप्लास्टिक की बढ़ती मात्रा अब पर्यावरण में हर जगह पाई जा रही है, जिसमें समुद्र, मिट्टी, भोजन और पीने का पानी भी शामिल है। माइक्रोप्लास्टिक विभिन्न प्रकार के उत्पादों में पाए जाते हैं, जैसे सौंदर्य प्रसाधन, सिंथेटिक कपड़े, प्लास्टिक की थैलियाँ और बोतलें। इनमें से कई उत्पाद कचरे के रूप में आसानी से पर्यावरण में प्रवेश कर जाते हैं। माइक्रोप्लास्टिक में कार्बन और हाइड्रोजन परमाणु पॉलिमर श्रृंखलाओं में एक साथ बंधे होते हैं। अन्य रसायन, जैसे कि *फ्थलेट्स, पॉलीब्रोमिनेटेड डिफेनिल ईथर,* और *टेट्राब्रोमोबिसफेनॉल* ए (टीबीबीपीए) भी आमतौर पर माइक्रोप्लास्टिक्स में मौजूद होते हैं, और इनमें से कई रासायनिक योजक पर्यावरण में प्रवेश करने के बाद प्लास्टिक से बाहर निकल जाते हैं।

उत्पति और वितरण

हालाँकि प्लास्टिक एक बड़ी चिंता का विषय है, लेकिन इससे भी बड़ा (हालाँकि छोटा) है : 5 मिलीमीटर (0.2 इंच) से कम आकार के सूक्ष्म प्लास्टिक कण जिन्हें माइक्रोप्लास्टिक कहा जाता है। इस परिभाषा में आमतौर पर नैनो–स्केल में प्लास्टिक के टुकड़े शामिल होते हैं, जिनका आकार <1 μm होता है। ये दो प्रकार के होते हैं; प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक और द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक। प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक के उदाहरणों में शामिल हैं व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों में पाए जाने वाले माइक्रोबीड्स, औद्योगिक विनिर्माण में उपयोग किए जाने वाले प्लास्टिक छर्रे और सिंथेटिक वस्त्रों में उपयोग किए जाने वाले प्लास्टिक फाइबर जैसे नायलॉन। प्राथमिक माइक्रोप्लास्टिक विभिन्न चौनलों में से किसी के माध्यम से सीधे पर्यावरण में प्रवेश करते हैं – उदाहरण के लिए, उत्पाद का उपयोग (उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों को घरों से अपशिष्ट जल प्रणालियों में धोया जा रहा है), विनिर्माण या परिवहन के दौरान अनजाने में नुकसान या धोने के दौरान घर्षण (उदाहरण के लिए, सिंथेटिक वस्त्रों से बने कपड़ों की धुलाई)। द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक बड़े प्लास्टिक के टूटने से बनते हैं, यह आमतौर पर तब होता है जब बड़े प्लास्टिक मौसम के संपर्क में आते हैं, उदाहरण के लिए, तरंग क्रिया, वायु घर्षण और सूर्य के प्रकाश से पराबैंगनी विकिरण द्वारा।

माइक्रोप्लास्टिक्स, जिनका व्यास पांच मिलीमीटर तक हो सकता है, समुद्री प्लास्टिक के टूटने, पाइपलाइन से निकलने वाले रिसाव, उत्पादन सुविधाओं से रिसाव और अन्य स्रोतों से समुद्र में प्रवेश करते हैं। जब समुद्री जीव जैसे पक्षी, मछली, स्तनधारी और पौधे माइक्रोप्लास्टिक को निगल लेते हैं, तो उनमें विषाक्त और यांत्रिक दोनों तरह के प्रभाव होते हैं, जिससे भोजन का सेवन कम होना, दम घुटना, व्यवहार में परिवर्तन और आनुवंशिक परिवर्तन जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। समुद्री भोजन के ज़रिए खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करने के अलावा, लोग हवा से माइक्रोप्लास्टिक को सांस के ज़रिए अंदर ले सकते हैं, पानी से उन्हें निगल सकते हैं और त्वचा के ज़रिए उन्हें

अवशोषित कर सकते हैं। माइक्रोप्लास्टिक विभिन्न मानव अंगों में और यहाँ तक कि नवजात शिशुओं के प्लेसेंटा में भी पाए गए हैं। सेल्यूलोज एसीटेट फाइबर के रूप में जाना जाने वाला माइक्रोप्लास्टिक सिगरेट फिल्टर का अधिकांश हिस्सा होता है। एक अरब धूम्रपान करने वाले सालाना छह ट्रिलियन सिगरेट पीते हैं, ये फाइबर दुनिया के हर कोने में पहुँचते हैं। सिगरेट के बट समुद्र तटों पर सबसे आम प्लास्टिक कूड़े हैं, जिससे समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र माइक्रोप्लास्टिक रिसाव के लिए अतिसंवेदनशील हो जाते हैं। जब वे टूटते हैं, तो सिगरेट से माइक्रोप्लास्टिक, भारी धातुएं और कई अन्य रसायन निकलते हैं जो पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य और सेवाओं पर प्रभाव डालते हैं।

पर्यावरण और स्वास्थ्य पर प्रभाव

माइक्रोप्लास्टिक का जैव निम्नीकरण नहीं होता है। इसलिए, पर्यावरण में एक बार प्राथमिक और द्वितीयक माइक्रोप्लास्टिक जमा हो जाते हैं और बने रहते हैं। माइक्रोप्लास्टिक कई तरह के वातावरण में पाए गए हैं, जिनमें महासागर और मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्र शामिल हैं। अकेले महासागरों में, सभी प्रकार के प्लास्टिक से होने वाला वार्षिक प्लास्टिक प्रदूषण, 21वीं सदी की शुरुआत में 4 मिलियन से 14 मिलियन टन होने का अनुमान लगाया गया था। माइक्रोप्लास्टिक वायु प्रदूषण का भी एक स्रोत है जो धूल और हवा में मौजूद रेशेदार कणों में पाया जाता है। माइक्रोप्लास्टिक के श्वाँस द्वारा शरीर में जाने से होने वाले स्वास्थ्य संबंधी प्रभाव अभी तक अज्ञात हैं।

2018 तक, समुद्री और मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्रों में संयुक्त रूप से, 114 से अधिक जलीय प्रजातियों में माइक्रोप्लास्टिक पाया गया था। माइक्रोप्लास्टिक विभिन्न अकशेरुकी समुद्री जानवरों के पाचन तंत्र और ऊतकों में पाए गए हैं, जिनमें केकड़े जैसे क्रस्टेशियन शामिल हैं। मछलियों और पक्षियों द्वारा पानी की सतह पर तैरते माइक्रोप्लास्टिक को निगलने की संभावना होती है, वे प्लास्टिक के टुकड़ों को भोजन समझ लेते हैं। माइक्रोप्लास्टिक के अंतर्ग्रहण से जलीय प्रजातियां कम भोजन ग्रहण करती हैं और इसलिए उनके पास जीवन कार्यों को पूरा करने के लिए कम ऊर्जा होती है। इसके परिणामस्वरूप न्यूरोलॉजिकल और प्रजनन विषाक्तता हो सकती है। माइक्रोप्लास्टिक के समुद्री खाद्य श्रृंखलाओं में जूप्लैंकटन और छोटी मछलियों से लेकर बड़े समुद्री शिकारियों तक पहुँचने की संभावना होती है। पीने के पानी, बीयर और खाद्य उत्पादों, जिनमें समुद्री भोजन और टेबल नमक शामिल हैं, में माइक्रोप्लास्टिक पाया गया है। आठ अलग–अलग देशों के आठ व्यक्तियों को शामिल करते हुए एक पायलट अध्ययन में, प्रत्येक प्रतिभागी के मल के नमूनों से माइक्रोप्लास्टिक बरामद किया गया। वैज्ञानिकों ने मानव ऊतकों और अंगों में भी माइक्रोप्लास्टिक का पता लगाया है।

प्लास्टिक – जिसमें पॉलिएस्टर, ऐक्रेलिक और नायलॉन शामिल हैं – सभी कपड़ों की सामग्री का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा है। घर्षण के कारण, इन सामग्रियों से बने कपड़े और वस्त्र धोने या पहनने पर माइक्रोफाइबर के रूप में जाने जाने वाले माइक्रोप्लास्टिक को बहा देते हैं। वैश्विक कपड़ा मूल्य श्रृंखला का मानचित्रण करने वाली 2020 की यू.एन.ई.पी. रिपोर्ट के अनुसार, समुद्र में सालाना लगभग 9 प्रतिशत माइक्रोप्लास्टिक संग्रहण कपड़ों और अन्य वस्त्रों से होता है।

वितरण

1960 के दशक से वैश्विक प्लास्टिक उत्पादन में सालाना लगभग 8.7% की वृद्धि हुई है। आज, यह 600 बिलियन डॉलर का वैश्विक उद्योग है, जिसके जीवन–चक्र के अंत में सालाना लगभग 8 मिलियन मीट्रिक टन प्लास्टिक महासागरों में प्रवेश करता है। माइक्रोप्लास्टिक के कण जल निकायों, मिट्टी, और वायुमंडल में व्यापक रूप से फैले होते हैं। ये कण समुद्र के तल से लेकर पर्वतीय क्षेत्रों तक पाए जाते हैं, और यहां तक कि आर्कटिक बर्फ में भी इनकी उपस्थिति दर्ज की गई है। प्लास्टिक सामग्री या तो जमीन पर या समुद्र में उत्पन्न होती है। अनुमान बताते हैं कि लगभग 70–80% समुद्री प्लास्टिक भूमि–आधारित स्रोतों से आते हैं, जबकि 20–30% प्लास्टिक समुद्री स्रोतों से आते हैं। समुद्री स्रोतों से आने वाली प्लास्टिक सामग्री के

संबंध में, अनुमान है कि उनमें से आधे मछली पकड़ने वाले बेड़े के कारण होते हैं जो मछली पकड़ने के जाल, रेखाएँ, रस्सियाँ और कभी–कभी छोड़े गए जहाज़ों को पीछे छोड़ देते हैं।

माइक्रोप्लास्टिक का निपटान और चुनौतियाँ

1950 से 2015 के बीच, लगभग 6,300 मिलियन मीट्रिक टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न हुआ। इस कचरे का अधिकांश हिस्सा, लगभग 4,900 मिलियन मीट्रिक टन, भूमि भराव और पर्यावरण में समाप्त हो गया। उस अवधि के रुझानों के आधार पर, शोधकर्ताओं ने अनुमान लगाया कि 2050 तक भूमि भराव और पर्यावरण में प्लास्टिक कचरे की मात्रा 12,000 मिलियन मीट्रिक टन तक पहुँच जाएगी। फिर भी, प्लास्टिक प्रदूषण, विशेष रूप से माइक्रोप्लास्टिक से होने वाले प्रदूषण के संभावित खतरों को सरकारों और नीति निर्माताओं द्वारा बड़े पैमाने पर अनदेखा किया गया है।

पर्यावरण में पहले से मौजूद माइक्रोप्लास्टिक का उपचार माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण को कम करने का एक महत्वपूर्ण उपाय है। सिंथेटिक माइक्रोप्लास्टिक पॉलिमर को तोड़ने में सक्षम सूक्ष्मजीवों का उपयोग किया जा सकता है। कई बैक्टीरिया और फंगल प्रजातियों में बायोडिग्रेडेशन क्षमताएं होती हैं, जो पॉलीस्टाइनिन, पॉलिएस्टर पॉलीयुरेथेन और पॉलीइथिलीन जैसे रसायनों को तोड़ती हैं। ऐसे सूक्ष्म जीवों को संभावित रूप से सीवेज अपशिष्ट जल और अन्य दूषित वातावरण में माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में उपयोग किया जा सकता है।

2023 में, यूरोपीय आयोग ने उत्पादों में जानबूझकर मिलाए जाने वाले माइक्रोप्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाया था। इस प्रतिबंध का उद्देश्य माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा को कम करना और पर्यावरण को प्लास्टिक के छर्रों से होने वाले नुकसान को रोकना है। यूरोपीय आयोग की शून्य प्रदूषण कार्य योजना में माइक्रोप्लास्टिक उत्सर्जन के लिए 30% कमी का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह योजना विभिन्न नीतियों और उपायों के माध्यम से माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण को कम करने का प्रयास करती है।

निष्कर्ष

माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण एक गंभीर पर्यावरणीय और स्वास्थ्य समस्या है, जिसके निपटान के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग, कठोर नीतियाँ, और जागरूकता की आवश्यकता है। यूरोपीय आयोग की पहलें एक महत्वपूर्ण कदम हैं, लेकिन इस समस्या का स्थायी समाधान प्राप्त करने के लिए वैश्विक स्तर पर समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण को कम करने के लिए हमें उत्पादन, उपयोग, और निपटान के हर चरण में सावधानी बरतनी होगी। माइक्रोप्लास्टिक प्रदूषण जैसे संकट से निपटने के लिए पेरिस समझौते की तर्ज पर वैश्विक सहयोग समय की मांग है। प्लास्टिक प्रदूषण को रोकने और हमारे पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करने के उद्देश्य से सामूहिक सार्वजनिक प्रयास ही सुरक्षित पृथ्वी ग्रह सुनिश्चित करने हेतु आगे का मार्ग है।

मिट्टी जीवित है क्या?

डॉ. जंगम दीपिका
भा.वा.अ.शि.प.– उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

मिट्टी सिर्फ धूल या कचरा नहीं है, मृदा पृथ्वी पर जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। मिट्टी धरती की सतह पर एक पतली परत है। जलवायु, मूल पदार्थ, भू–आकृति, जीवित प्राणियों एवं समय के परिणामस्वरूप विकसित प्राकृतिक संरचना को मिट्टी कहा जाता है। मिट्टी 45% खनिज पदार्थ, 5% कार्बनीक पदार्थ, 25% पानी एवं 25% हवा से मिलकर बनी होती है। मिट्टी जीवों के निवास के लिए एक आवास होती है, और कार्बन संचयन एवं पोषक तत्वों के चक्र आदि में मदद करती है। पौधों के द्वारा मृदा में एक पूरी दुनिया को पोषित किया जाता है, जो उन्हें पोषण एवं संरक्षण प्रदान करते हैं। बैक्टीरिया, फंगस, ऐक्टिनोमाइसीट्स, प्रोटोजोआन्स एवं नेमैटोड्स जैसे सूक्ष्मजीव मिट्टी में सबसे छोटे एवं सबसे अधिक संख्यात्मक प्राणी होते है। एक स्वस्थ मिट्टी की चम्मच (लगभग एक ग्राम) में आमतौर पर सौ मिलियन से एक बिलियन बैक्टीरिया, एक लाख अलग–अलग फंगस एवं कईं सौ नेमैटोड्स हो सकते हैं। इस विविध जीव समुदाय द्वारा मृदा को जीवंत एवं स्वस्थ रखा जाता है। यह विशाल संसार मिट्टी की जैवविविधता को गठित करता है और मूल जैव–भौतिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने में मिट्टी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मिट्टी वायुमंडल में कार्बन की मात्रा का तीन गुना और सभी पौधों और पेड़ों में निहित मात्रा से दोगुना संग्रहीत करती है। तेजी से हो रही भूमि का क्षरण मिट्टी के लिए एक बड़ा खतरा है। भारत में, लगभग 97.8 मिलियन हेक्टेयर भूमि विभिन्न प्रकार के क्षरण से पीड़ित हैं (अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र, 2021)। मृदा अपरदन (जल और पवन अपरदन के कारण), लवणता, क्षारीयता और अम्लता की समस्याएं, जल भराव एवं खनन गतिविधियाँ भूमि क्षरण के कारण हैं। वनों का कटाव, अनियंत्रित चराई, अंधाधुंध उर्वरकों का उपयोग एवं स्थानांतरित खेती भूमि क्षरण प्रक्रिया को बढ़ाने का प्रमुख कारक हैं। हालांकि, भूमि को बहाल करने के लिए, यह पहचानना अत्यंत आवश्यक है कि मिट्टी अन्य जीवों की तरह जीवित है।

मिलर (1995) ने प्रस्तावित किया था कि सभी जीवन प्रणालियाँ कईं प्रकार की अन्य प्रणालियों से मिलकर बनी होती हैं जो पदार्थ, ऊर्जा, और सूचना को सामान्यतः ग्रहण, प्रसंस्करण, और निर्गमन करती हैं। उन्होंने जीवित प्रणालियों को परिभाषित करने वाली बीस महत्वपूर्ण उपप्रणालियों की पहचान की। मिनामी (2021) ने मिलर की जीवित प्रणालियों के सिद्धांत का उपयोग करके मिट्टी को एक जीवित प्रणाली के रूप में दर्शाने के लिए, मिट्टी की जीवों में पाए जाने वाले उप प्रणालियों के साथ तुलना की।

पदार्थ–ऊर्जा के ग्रहण, उपयोग एवं निर्वहन कैसे करें:–

ग्रहणकर्ता:– मृदा की सतह जो हवा, बारिश, बर्फ, जानवर और पौधों के अवशेषों को ग्रहण करती है। मृदा में C परत जो पोषक तत्वों को ग्रहण करती है।

वितरक:– मृदा में तरल एवं गैस चरण रक्त वाहिकाओं के अनुरूप होते है। मृदा का जल एवं गैस रक्त के समान होते है।

परिवर्तक:– मृदा के जीवों एवं माइक्रोब्स के माध्यम से विघटन के समान होता है।

निर्माता:– मृदा के माइक्रोब्स एवं पौधों के प्रजनन के समान होता है।

पदार्थ–ऊर्जा भंडारण:– आयों को आकर्षित करने वाली चिकनी मिट्टी एवं ह्यूमस।

एक्सट्रूडर:– ठोस, गैस एवं तरल चरणों की अपवाह एवं घुसपैठ।

समर्थक:– मृदा संरचना।

मिट्टी पर्यावरण को कैसे समझती है, जानकारी को पूर्ण करती है, जमा करती है एवं याद करती है।

इनपुट ट्रांसड्यूसरः– सूक्ष्मजीव एवं बढ़ते हुए पौधे।

समयपालः– आयनों का अधिशोषण एवं मिट्टी–ह्यूमस परिसरों का बफरिंग प्रभाव।

डिकोडरः– पौधे की जड़ द्वारा निकाले जाने वाले एलिलोपैथिक पदार्थ एवं क्ले कण इंटरफेस के इलेक्ट्रिकल घटनाएँ।

एसोसिएटरः– क्ले–ह्यूमस संयोजन। वे आयन विनिमय एवं चेलेट कार्य के रूप में काम करते हैं।

स्मृतिः– कोशिकात्मक जीनों के समान होता है, जैसे कि सूक्ष्मजीवों एवं एंजाइम।

एन्कोडरः– मृदा के ठोस, तरल एवं गैस चरणों एवं उनके परिवर्तन।

पुनरूत्पादकः– पत्थर, गर्मी, प्रकाश, पानी, हवा, पौधों की जड़ें, मृदा जीवों एवं माइक्रोब्स। मृदा इन संघर्षों द्वारा बनती है।

आउटपुट ट्रांसड्यूसरः– पौधों की वृद्धि, उत्पादन, मृदा की स्वास्थ्य एवं पोषण क्षमता।

निष्कर्षः–

मिट्टी एक जीवित वस्तु है – यह धीरे–धीरे चलती, परिवर्तनशील एवं सदैव बढ़ती रहती है। दूसरे जीवों की तरह, मिट्टी सांस लेती है एवं जीवित रहने के लिए हवा एवं पानी की आवश्यकता होती है। मिट्टी की संरक्षण एवं सुरक्षा करना मिट्टी को जीवित एवं स्वस्थ बनाए रखने का सबसे अच्छा तरीका है। यदि अवक्रमित भूमि को उपयुक्त मिट्टी संरक्षण का तरीका अपनाकर पुनर्स्थापित किया जाए तो मिट्टी जलवायु परिवर्तन को रोकने एवं कार्बन संचयन के माध्यम से ग्रीनहाउस गैसों के कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

राजस्थान के अर्द्ध शुष्क जिले – जोधपुर में चारा प्रबंधनः एक अवलोकन

श्री एस.आर. बलोच एवं सुश्री. वीनू महेचा
भा.वा.अ.शि.प.-शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

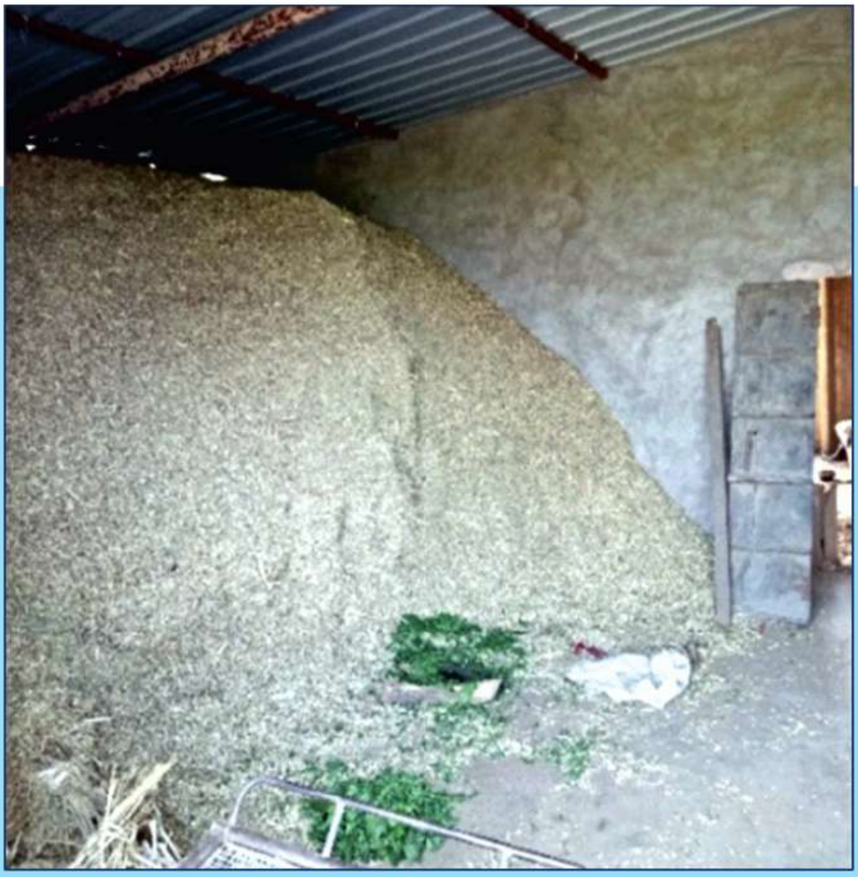

चारा संचयनः पक्की संरचना–गाँव भांडूजाटी

राजस्थान के थार मरुस्थल और अरावली पर्वत श्रृंखला के मध्य स्थित संक्रमण क्षेत्र को अर्द्ध शुष्क क्षेत्र कहते है। अर्द्ध–शुष्क क्षेत्र शुष्क भूमि का एक उपप्रकार है जिसका शुष्कता सूचकांक अर्थात कुल वार्षिक वर्षा से संभावित वाष्पोत्सर्जन का अनुपात 0.20 और 0.50 के बीच होता है (लाल, 2004, एफएओ, 2016)। जोधपुर जिला राजस्थान के अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में स्थित है। अर्द्ध शुष्क क्षेत्र का सामान्य लक्षण है – वर्षा की अनियमितता। वर्षा की इस अनियमितता के कारण कृषि उत्पादन अस्थायी होता है। इसलिए कृषि के साथ पशुपालन किया जाना एक सामान्य विकल्प है। पशुधन के स्वास्थ्य और उत्पादकता के अनुरक्षण के लिए पोषण की उपलब्धता और गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण कुंजी है। पशुओं के पोषण की आपूर्ति हेतु चारा प्रबंधन ही एकमात्र उपाय है। चारा प्रबंधन के अंतर्गत विभिन्न चारा संसाधनों की उपलब्धता, चारा संसाधनों का सरंक्षण और विभिन्न चारा संबंधित सेवाओं का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ ही अलग–अलग पशुधन द्वारा चारा उपभोग और किसी क्षेत्र विशेष में चारे की उपलब्धता अथवा अभाव को भी चारा प्रबंधन का महत्वपूर्ण भाग माना जाता है। चारा प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य चारे के पोषक तत्वों को ध्यान में रखते हुए पूरे वर्ष पशुधन की आवश्यकता को पूरा करना है जो कि अंततः पशुधन की उत्पादकता में वृद्धि करें।

इस अध्ययन के अंतर्गत जोधपुर के आठ गाँवों (बिरई, भांडूजाटी, झंवर, खेजडला, भैंसेर–कोतवाली, ओसीया, तिवरी) का प्रश्नावली आधारित सर्वेक्षण किया गया। उसके फलस्वरूप इस क्षेत्र विशेष के प्रमुख चारा संसाधन, ऋतु अनुसार चारे की उपलब्धता, और चारा संचयन की

योजनाओं का मूल्यांकन किया गया। इसका विवरण निम्नानुसार है–

1.ऋतु अनुसार प्रमुख चारा संसाधन:

क्षेत्र में ऋतु के अनुसार अलग–अलग प्रकार के चारा संसाधनों का उपयोग किया जाता है। जिनमें मुख्यतः पेड़, घास, कृषि अवशेष, संकेन्द्रित भोजन (सांद्रित–लिकेबल, कॉटन केक, आदि), खल और अन्य शामिल है। इसमें ऋतु अनुसार उगाई जाने वाली फसलें निम्नलिखित हैं – *पेनीसेटम टाइफोईडीस, ट्रीटीकम ऐस्टीवम, एरेकिस हाइपोगीया, विग्ना ऐकोनीटीफोलिया, विग्ना रेडिएटा* और *सोरघम बाईकलर* (कृषि–अवशेष)।

इसके अतिरिक्त चारा घास – *लेसुरस सिंडीकस* (सेवन) *सेंकरस सिलेरिस* धामन घास, *सेंकरस सेटीजेरस* (अंजन) एवं, *पेनिकम पेनिकम टरजिडम* (मुरट) घास और वृक्ष – खेजडी, बेर, नीम रोहिडा इत्यादि हैं।

अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में ग्रीष्म ऋतु की प्रबलता सर्द एवं वर्षा ऋतु के अनुपात में ज्यादा होती है अतः यहाँ का प्रमुख चारा संसाधन संचित किया हुआ कृषि अवशेष है। अध्ययन के अनुसार भी सबसे विश्वसनीय संसाधन कृषि अवशेष पाया गया है।

प्रश्नावली आधारित सर्वेक्षण– गाँव तिवरी

2. पशुधन द्वारा चारा उपभोग:

प्रत्येक ऋतु में 50 से 100% परिवार कृषि–अवशेष का उपयोग करते हैं। विभिन्न पशुधन के चारे की औसत आवश्यकता इस प्रकार है– गाय के लिए 14/किलोग्राम प्रतिदिन, भैंस के लिए 18/किलोग्राम प्रतिदिन और बकरी के लिए 3/किलोग्राम प्रतिदिन। अतः स्पष्ट है कि भैंसों द्वारा औसत चारे की खपत गायों की तुलना में अधिक है और गायों द्वारा चारे की खपत बकरियों की तुलना में अधिक है। विभिन्न पशुधन के उपभोग पैटर्न अलग–अलग है। परिवारों के पास उपलब्ध खेती योग्य क्षेत्र के वितरण के आंकडों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बड़ी भूमि वाले परिवार अपने पशुधन को बेहतर संसाधन प्रदान कर सकते हैं और बदले में अपने पशुधन के लिए चारा फसलें भी उगा सकते हैं। लेकिन छोटे भूमि धारक विशिष्ट फसलों की खेती करने हेतु बाध्य होते हैं जिससे उन्हें अच्छा आर्थिक लाभ सुनिश्चित हो जाए। इसी कारण छोटे भूमिधारक और सीमांत कृषक चारा खरीदने के लिए बाजारों पर निर्भर रहते हैं, जिससे इन कृषकों के खर्च में वृद्धि होती है और उन्हें पशुधन पालने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता है। यहां, छोटे भूमि धारकों और सीमांत कृषक को विभिन्न प्रकार के चारा–पेड़ों, फसलों और घासों के बारे में ज्ञान की भी कमी थी। जिससे छोटी जोत का कुशलतापूर्वक उपयोग करके चारा– पेड़ों, चारा–घासों और फसलों की दीर्घकालिक उपलब्धता और सतत विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे ऐसे संस्थानों को बनाने की आवश्यकता का पता चलता है जो सभी को लाभ पहुंचाने वाले नवीनतम अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों के बारे में उपयोगी जानकारी प्रदान कर सकते हैं।

3. चारा संचयन:

वर्षा ऋतु में हरे चारे की प्रचुरता रहती है जबकि ग्रीष्म ऋतु में कमी रहती है। ग्रीष्म काल में संचित चारा उपयोग में लाया जाता है। सभी गांवों में चारा, भूसा (हरा चारा) के रूप में संग्रहित किया जाता है। विभिन्न प्रकार की संरचनाएँ या तो स्थायी अथवा अस्थायी का उपयोग लंबी अवधि के लिए चारा संग्रह करने हेतु किया जाता है।

चारा संचयनः कच्चा संरचना– गाँव झंवर

उपयोगिता और संचयन की अवधि के अनुसार चारा संचयन के लिए तीन तरह की संरचनाएं काम में लायी जाती है– पक्की संरचना, कच्ची संरचना, और खुली संरचना। खुला स्ट्रक्चर/ संरचना 14 से 100 प्रतिशत परिवारों द्वारा उपयोग में लिया जाता है। सभी गांवों में चारा संचयन की दीर्घकालिक भंडारण अवधि 1 वर्ष से अधिक थी। यह पूरे वर्ष सूर्य के प्रकाश और शुष्क पर्यावरणीय परिस्थितियों की उपस्थिति से उत्पन्न होता है जो स्वाभाविक रूप से रोगाणुओं, बैक्टीरिया और अन्य संक्रामक रोगों को फैलाने वाले उन कीटों के विकास को रोकता है जो कि भंडारण उत्पादों को नुकसान पहुंचाता हैं।

4.चारे का क्रय–विक्रय

अलग अलग गाँवों में किसान के लिए चारे का विक्रय मूल्य की दर रुपये 9.25/– किलो से रुपये 2.75/–किलो के मध्य है जब कि क्रय मूल्य की दर रुपये 17.50/–किलो से रुपये 4.50/–किलो के मध्य रहती है। जिन गाँवों में चारा उत्पादन अधिक होता है वहां चारे का क्रय–विक्रय मूल्य कम होता है जबकि जहां ज्यादा मांग होती है वहां दोनों क्रय– विक्रय मूल्य की दर अधिक रहती है। यहाँ भी सीमांत कृषक को बाजार में चारे खरीदने हेतु अधिक कीमत देनी पड़ती है जबकि अगर वही चारा बाजार में बेचने पर कम मूल्य में विक्रय होता है। अतः इससे भी उनको पशुपालन हेतु चारा प्रबंधन में समस्या का सामना करना पड़ता है।

निष्कर्ष:

संपूर्ण अवलोकन के अनुसार राजस्थान के अर्द्ध शुष्क क्षेत्र के चारा प्रबंधन की एक व्यापक तस्वीर समाने आई है। चूँकि जोधपुर जिला अर्द्ध शुष्क होने के साथ–साथ स्वादिष्ट मिष्टानों का भी गढ़ है इसलिए यहाँ दूध की मांग अन्य जिलों की तुलना में अधिक है। इसलिए चारा प्रबंधन न सिर्फ गांवों तक सीमित है बल्कि शहर में भी इसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम चारा उपभोग प्रति परिवार एवं गाय, भैंस और बकरी द्वारा दूध उत्पादकता का सार्थक संबंध स्थापित हुआ है जहां r(गाय)= 0.8846, r(भैंस)= 0.5949 और r(बकरी)= 0.7512 है। यह सार्थक संबंध दर्शाता है कि चारे की उपलब्धता और गुणवत्ता को सुनिश्चित करने से पशुधन के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि हो सकती है। पशुपालन सांख्यिकी 2022 के अनुसार राजस्थान देश के दूध उत्पादन के क्षेत्र में शीर्ष है वहीं भारत भी विश्व में दूध उत्पादन में अग्रणी है किन्तु एक गंभीर समस्या यह है कि इतने उत्पादन और पशुधन की सम्पन्नता के बावजूद देश की दूध उत्पादकता (1777 किलो प्रति पशु प्रतिवर्ष) विश्व की तुलना में काफी कम (2699 किलो प्रति पशु प्रतिवर्ष) है। इससे स्पष्ट होता है कि पशुओं के दूध उत्पादकता को बढ़ने के क्षेत्र में शोध कार्य की सम्भावनाएं उत्तम है।

चारा संचयनः खुली संरचना – गाँव बिरई

रीछ (*मेलर्सस उर्सिनस*) की आहार पारिस्थितिकी और बीज फैलाव में इसकी भूमिका

डॉ. टी.एन. मनोहारा, डॉ. एम. बी. सिंह,
भा.वा.अ.शि.प.-काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलुरू

आकृति 1– रीछ का उत्सर्जन जिसमें बीज एवं किटाणुओं के अवशेष प्रदर्शित है।

भारतीय भालू, जिसे अक्सर रीछ के नाम से जाना जाता है (*मेलर्सस उर्सिनस*, 1791; कुलः उर्सिडे), एक ऐसी प्रजाति है जो केवल भारतीय उपमहाद्वीप पर पाई जा सकती है। भारत में 174 संरक्षित क्षेत्रों में यह प्रजाति पाई जाती है, जिनमें 46 राष्ट्रीय उद्यान और 128 वन्यजीव अभयारण्य शामिल हैं। प्रजातियों के व्यापक वितरण के बावजूद, घटते खाद्य स्रोतों, अपमानित और खंडित आवासों, जंगल की आग, मवेशियों के चरने और बढ़ते मानव–पशु संघर्ष के कारण इनकी आबादी में कमी हो रही है। कम जनसंख्या घनत्व, बड़े घरेलू क्षेत्र की आवश्यकताएँ एवं निम्न प्रजनन दर उनकी आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले सीमित कारक हैं (ईसा, 2001)। रीछ को प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ (आईयूसीएन) द्वारा "असुरक्षित" की श्रेणी में सूचीबद्ध किया गया है और इसे भारतीय वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची में शामिल करने के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर कन्वेंशन के परिशिष्ट में भी शामिल किया गया है। वन्य जीवों और वनस्पतियों की लुप्तप्राय प्रजातियों में (साइट्स) (कुमार और पॉल, 2021)। पूरे भारत में रीछ की आबादी का आकार 6,000 से 11,000 के बीच होने का अनुमान है। जनसंख्या समृद्धि और आवास उपलब्धता के संदर्भ में, पश्चिमी घाट रेंज और मध्य भारत वितरण के एकमात्र गढ़ हैं (योगानंद एट अल., 2006)। हालाँकि यह अज्ञात है कि रीछ जंगल में कितने समय तक जीवित रहते हैं, लेकिन कैद में उनके 40 साल तक जीवित रहने की सूचना है (वार्ड और किनास्टन, 1995)।

आकृति 1— "स्लॉथ भालू" के रूप में संदर्भित होने के अलावा, "लैबिएटेड भालू" शब्द जानवर के उभरे हुए निचले होंठ और तालु का भी वर्णन करता है, जिसका उपयोग वह कीड़ों को चूसने के लिए करता है। इसके लंबे, झबरा फर, बड़े दराँती के आकार के पंजे और चेहरे के चारों ओर एक अयाल है। भूरे भालू और एशियाई काले भालू (लॉरी और सेडेनस्टिकर, 1977) की तुलना में यह अधिक दुबला होता है। इसमें कीटभक्षी प्रवृत्ति के साथ कई विशेषताएं हैं। कई मामलों में, रीछ अवसरवादी सर्वाहारी होते हैं। परिणामस्वरूप, कोई जानवर कैसा व्यवहार करेगा यह उसके आवास में भोजन और अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करता है (जोंकेल और कोवान, 1971)। कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में रीछ का भोजन की आदतों पर स्कॉलर (1967) द्वारा किए गए अध्ययन को इस प्रजाति पर अग्रणी कार्य माना जाता है। उनके भोजन के प्राथमिक स्रोत कीड़े हैं, विशेष रूप से दीमक (*ओडोन्टोटर्मिस, मैक्रोटर्मिस, माइक्रोसेरोटर्मिस, हाइपोटर्मिस* और *रेटिकुलिटर्मेस* प्रजाति) और चींटियाँ। हालाँकि, शेष मौसमी वर्ष में दीमक और अन्य कीड़े भालुओं के भोजन का 80% से अधिक हिस्सा बना सकते हैं, जबकि पेड़ों के फलने के मौसम के दौरान फल 70 से 90 प्रतिशत के बीच हो सकते हैं (सीडेनस्टिकर एट अल., 2011)। इसके अलावा, रीछ और लोग आम आवासों में कुछ फलों की प्रजातियों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं (बारगाली एट अल., 2004)। पौधों की प्रजातियों की विशाल विविधता को बनाए रखने से कीट विविधता को अधिकतम करने में मदद मिलेगी और इस प्रकार रीछ के लिए भोजन स्रोत में वृद्धि होगी।

रीछ द्वारा माँद का उपयोग प्रजनन और सुरक्षा दोनों के लिए किया जाता है (अख्तर एट अल., 2008)। घने लैंटाना झाड़ियों, पहाड़ियों और समतल सतहों पर चट्टानी क्षेत्रों, पेड़ों की जड़ों के नीचे, बड़ी चट्टानों वाली पहाड़ियों और निवास स्थान के आधार पर नाले के बिस्तरों में पाए जा सकते हैं (योगानंद एट अल., 2005)। भालू अक्सर झाड़ियों, साल वुडलैंड और पानी के पास के आवासों के साथ—साथ खेतों, वृक्षारोपण और खुले आवासों को पसंद करते हैं (योगानंद एट अल., 2005)। हालाँकि, घरेलू सीमा में मौसम के अनुसार उतार—चढ़ाव हो सकता है। दीमकों की उपस्थिति और दीमकों के टीलों के स्थायित्व ने संभवतः इस मौसमी परिवर्तन में योगदान दिया (जोशी एट अल., 1997)।

बीज फैलाव में भूमिका

पादप समुदायों में बीज फैलाव एक महत्वपूर्ण सफलता है, और कशेरुक समुदायों में फ्रुजिवोरी बहुत महत्वपूर्ण है (कोरलेट, 2017)। बीज फैलाव में भालुओं की भूमिका अपरिहार्य है (फ्रेड्रिक्सन एट अल., 2006; स्टीनमेट्ज़ एट अल., 2013)। वे बीज फैलाव और दीमक नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि दोनों को वन पारिस्थितिकी तंत्र के दीर्घकालिक अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। बीज फैलाने वाले के रूप में रीछ की भूमिका दक्षिण भारत में मांसल—फल प्रजातियों की जनसंख्या गतिशीलता में सहायक है। इसलिए, भालू अपने पारिस्थितिकी तंत्र में पौधों की प्रजातियों की संरचना पर बहुत प्रभाव डालते हैं (हैरर और लेवी, 2018)।

ऐसा प्रतीत होता है कि रीछ की पाचन आंत के माध्यम से बीज पारित होने से अंकुरण व्यवहार पर कोई हानिकारक प्रभाव दिखाए बिना कुछ प्रजातियों की अंकुरण दर में वृद्धि हुई है। बीज के अंकुरण का समय अप्रयुक्त और पारित दोनों बीजों में काफी भिन्न होता है, और अधिकतम बीज अंकुरण *सिज़ीजियम क्यूमिनी* में दर्ज किया गया है, जिसके बाद *बुकाननिया लैज़ान, कैसिया फिस्टुला* और *मैंगीफेरा इंडिका* (कुमार और पॉल, 2021) हैं। इसके अलावा, रीछ द्वारा पर्णपाती वन का अधिक उपयोग संभव है क्योंकि रीछ *कैसिया फिस्टुला, कॉर्डिया ओब्लिक्वा,* और *ज़िज़ीफुस मॉरिटियाना* (रमेश एट अल., 2009) जैसे खाद्य पौधों को पसंद करते हैं, जो अर्ध—सदाबहार जंगल की तुलना में वहां अधिक उपलब्ध थे। इस प्रकार रीछ आक्रामक खरपतवार लैंटाना के महत्वपूर्ण बीज फैलाने वाले के रूप में कार्य कर सकते हैं, जिससे रिजर्व के अन्य हिस्सों में इसके फैलने की संभावना बढ़ जाती है। अपनी शुरुआत के बाद से, यह पूरे देश में फैल गया है और भारत के अधिकांश उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय भागों पर आक्रमण किया है। लैंटाना बीजों को फैलाने वाले के रूप में रीछ की भूमिका के आवास प्रबंधन पर गंभीर प्रभाव पड़ सकते हैं (राथर एट अल., 2020)।

वृक्ष – भारतीय डाक की नजर से...

सुश्री मन्नू सरोज
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

डाक टिकटों का संग्रह किसी भी राष्ट्र के विषय में जानने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण साधन साबित हो सकते हैं। इनके द्वारा राष्ट्र के इतिहास, संस्कृति, महान विभूतियों, देशीय विवधता, परम्पराओं एवं महत्वपूर्ण उपलब्धियों के सन्दर्भ में जानने का मौका मिलता हैं।

टिकटों पर अंकित पेड़ों, जानवरों, नदियों, फूलों, पहाड़ों आदि की छवि हमें इनके प्रति संवेदनशील बनाती हैं। प्रस्तुत रचना में भारतीय डाक द्वारा समय–समय पर वृक्षों के सम्मान एवं महत्व के सन्दर्भ में जारी किए गए डाक टिकट, जिनमें पेड़ों को दर्शाया गया है, पर प्रकाश डाला गया हैं।

ब्यूटिया मोनोस्पर्मा

1981 को जारी 35 पैसे का टिकट।

पलाश (पलास, छूल, परसा, ढाक, टेसू, किंशुक, केसू) एक वृक्ष है जिसके फूल बहुत ही आकर्षक होते हैं। इसके आकर्षक फूलों के कारण इसे "जंगल की आग" भी कहा जाता है। पलाश का फूल उत्तर प्रदेश और झारखण्ड का राज्य पुष्प हैं। इसके पल्लव धूसर या भूरे रंग के रेशमी और रोयेंदार होते हैं। छाल का रंग राख की तरह होता है।

1981 को जारी 100 पैसे का टिकट।

इसे गोल्डन शावर ट्री, *पर्जिंग फिस्टुला,* इंडियन लैबर्नम या अमलतास के नाम से जाना जाता है, फैबेसी परिवार का एक फूल वाला वृक्ष एक पर्णपाती पेड़ है। हालाँकि, इस पेड़ का अपनी सुंदरता के अलावा सांस्कृतिक महत्व भी है। अमलतास का उल्लेख भारत की प्राचीन पाठ्यपुस्तकों जैसे रामायण और महाभारत में किया गया है। *कैसिया फिस्टुला* भारतीय राज्य केरल का राज्य फूल भी है।

कैसिया फिस्टुला

1981 को जारी 200 पैसे का टिकट।

आर्किड वृक्ष, या कचनार (*बौहिनिया वेरिएगाटा*), एक पर्णपाती वृक्ष है जिसमें विशिष्ट तितली के आकार के पत्ते और आकर्षक, आर्किड जैसे फूल होते हैं। फूलों से सुसज्जित, संकीर्ण बैंगनी, गुलाबी और लैवेंडर की पंखुड़ियाँ एक ऑर्किड के समान दिखती हैं। ये फूल सितंबर से नवंबर तक पेड़ों पर दिखाई देते हैं और देखने में सुंदर होते हैं, जो शरद ऋतु के परिदृश्य में रंगों की एक ज्वलंत छटा बिखेरते हैं। दो पालियों वाली पत्तियों की विशेषता के कारण इस पेड़ का लैटिन नाम बौहिनिया पड़ा।

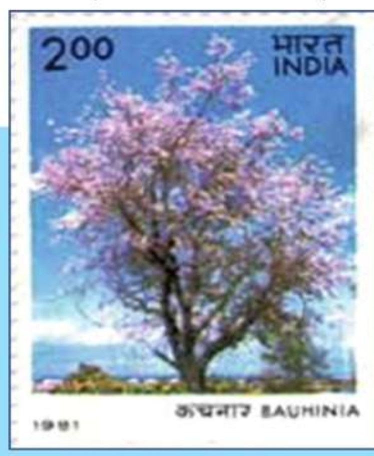

बौहिनिया वेरिएगाटा

प्लैटैनस औरिएंटलिस

19.11.1987 को जारी 60 पैसे का टिकट।

"प्लाटानाके" परिवार के चिनार और पूर्वी भूमध्य क्षेत्र के मूल निवासी ने पश्चिमी हिमालय में 1,200 – 2,400 मीटर की ऊंचाई पर एक घर पाया है। यह नम और अच्छी जल निकास वाली मिट्टी पर पनपता है फर्नीचर के लिए लकड़ी औषधीय महत्व की भी है। इसकी छाल मटमैली भूरी और हरी सफेद रंग की होती है। जब पतझड़ इसे उग्र नारंगी और सुनहरे रंग में बदल देता है तो पेड़ अपने सबसे सुन्दर रूप में दिखाई देता है।

इंडिया पोस्ट द्वारा जारी किए गए 150 पैसे (या 1. 50 रुपये) का टिकट।

पीपल 'मोरेसी' कुल का सदस्य है। पत्तियाँ पान के आकार की होती हैं, शीर्ष पर एक लंबी पूंछ में पतली होती हैं। हिमालय की निचली ढलानों पर जंगली रूप से उगने वाला यह अब भारत के अधिकांश हिस्सों में पाया जाता है। हिंदू और बौद्ध इसकी पूजा करते हैं।

फाइक्स रिलीजिओसा

19.11.1987 को इंडिया पोस्ट द्वारा जारी 650 पैसे (या 6.50 रुपये) का टिकट।

"बरगद जीनस "फाइकस" से संबंधित है, अंजीर, ज्यादातर उष्णकटिबंधीय देशों में निवास करता है। बोलचाल की भाषा में "बरगद" या "वट" कहा जाता है, यह एक सुंदर पेड़ है और आर्थिक मूल्य का भी है। फैले हुए मुकुट वाला एक विशाल पेड़ जो कभी–कभी 30–35 मीटर तक पहुंचता है। इसे हिंदुओं द्वारा पवित्र माना जाता है और कई मंदिरों में इसकी पूजा की जाती है।

फाइक्स बेनघालेंसिस

19.11.1987 को इंडिया पोस्ट द्वारा जारी किए गए 500 पैसे (या 5/– रुपये) का टिकट।

साल जीनस "शोरिया" से संबंधित है भारत में कुल वन क्षेत्र का 13. 3% हिस्सा कवर करता है, इसकी लकड़ी इसके लिए मूल्यवान है। साल का उल्लेख 'रामायण' और "महाभारत" तथा कालिदास के "ऋतुसंहार" और "मेघदूत" में मिलता है। साल वृक्ष अपनी लकड़ी के लिए मूल्यवान है।

शोरिया रोबस्टा

05.06.1988 को इंडिया पोस्ट द्वारा "खेजड़ी वृक्ष" (हिंदी में और अंग्रेजी में) शीर्षक से जारी 60 पैसे का टिकट।

"खेजड़ी वृक्ष एक छोटे से मध्यम आकार का, सदाबहार या लगभग इतना ही,

प्रोसेपिस सिनोरिया

हल्के पत्ते और शंक्वाकार कांटों से लैस पतली शाखाओं वाला है। इसे पारंपरिक रूप से राजस्थान के बिश्नोई समुदाय द्वारा संरक्षित किया गया है, जो वनस्पति और मिट्टी दोनों के संरक्षण के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय घटना है।

100 पैसे (या1 /–रुपये) का टिकट।

यह टिकट भारतीय डाक द्वारा 09.10.1993 को जारी किया गया था। यह एक लंबा पर्णपाती पेड़ भारत का गौरव, दक्षिण पूर्व एशिया के उष्णकटिबंधीय जंगलों का मूल निवासी है। टर्मिनल पुष्पगुच्छों में हल्के बैंगनी या गुलाबी फूल विकसित होते हैं, जिनमें लगभग छह झुर्रीदार पंखुड़ियाँ होती हैं, जो लगभग 3 सेंटीमीटर चौड़ी होती हैं।

लेगरस्ट्रोइमिया स्पेशियोसा

09.10.1993 को इंडिया पोस्ट द्वारा जारी 800 पैसे (या 8 /– रुपये) का टिकट।

यह एक लंबा पेड़, चिकनी पीली या हरे–भूरे रंग की छाल के साथ यह भारत के पर्णपाती जंगलों में व्यापक रूप से देखा जाता है। यह चमकीले लाल पत्तों के गुच्छों के साथ रंगीन दिखता है। इसे आमतौर पर गांव की सड़कों के किनारे छाया के लिए लगाया जाता है।

एरिथिना वेरिएगाटा

08.03.1987 को इंडिया पोस्ट द्वारा जारी किए गए 500 पैसे एवं 600 पैसे के दो टिकट।

इंडिया पोस्ट द्वारा पारिजात वृक्ष पर 500 पैसे एवं 600 पैसे के दो टिकटों का एक संयुक्त पट्टा जारी किया गया था, जिसमें पारिजात वृक्ष की एक छवि अंकित है। किंटूर का पारिजात वृक्ष दुनिया में एक विशेष स्थान रखता है। यह भारत का एक पवित्र बाओबाब वृक्ष है, इस पेड़ पर कभी–कभार ही फूल खिलते हैं, बहुत कम फूल, लेकिन जब खिलते हैं तो इसकी खुशबू दूर–दूर तक फैल जाती है। स्थानीय लोग इस पेड़ को अपना रक्षक मानते हैं और इसलिए वे हर कीमत पर इसकी पत्तियों और फूलों की रक्षा करते हैं। वे इसे उच्च सम्मान में रखते हैं। इस अनोखे पेड़ को देखने के लिए पर्यटकों का तांता लगा रहता है।

एडनसोनिया डिजिटाटा

300 पैसे (या 3 /– रुपये) का डाक टिकट।

10.12.1998 को इंडिया पोस्ट द्वारा जारी किया गया था। इसमें एक नीम के पेड़ और पूरी तरह से खिले हुए पत्तों को दर्शाया गया है और इसे भारतीय फार्मास्युटिकल कांग्रेस एसोसिएशन (आईपीसीए) के स्वर्ण जयंती समारोह के समय जारी किया गया था। इंडियन फार्मास्युटिकल कांग्रेस एसोसिएशन (आईपीसीए) देश में फार्मास्युटिकल गतिविधियों के लिए शीर्ष संघीय निकाय है। इस डाक टिकट अंक में आईपीसीए की स्वर्ण जयंती मनाई गई और इसमें नीम के पेड़ को दर्शाया गया है।

अजाडिरेक्टा इंडिका

हाइड्रोसीडिंग और वन संरक्षण में इसकी भूमिका

श्री विवेक चौहान
भा.वा.अ.शि.प.-वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हाइड्रोसीडिंग का इतिहास

हाइड्रोसीडिंग की शुरुआत 1940 के दशक में हुई थी जब अमेरिका में इसे पहली बार उपयोग में लाया गया। इस तकनीक को विकसित करने का मुख्य उद्देश्य ढलानों और पहाड़ियों पर मिट्टी के कटाव को रोकना और वनस्पति को पुनर्स्थापित करना था। समय के साथ, इस तकनीक में सुधार होते गए और यह विभिन्न प्रकार के परिदृश्यों में उपयोग होने लगी। आज, हाइड्रोसीडिंग का उपयोग सड़कों के किनारे, पार्कों, खेल के मैदानों, और खनन क्षेत्रों में भी किया जाता है।

परिचय

हाइड्रोसीडिंग एक आधुनिक कृषि तकनीक है जिसका उपयोग पौधों के बीज बोने के लिए किया जाता है। यह तकनीक विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उपयोगी होती है जहां परंपरागत बुवाई कठिन या असंभव होती है। भारत में वन संरक्षण और पुनर्स्थापन के संदर्भ में, हाइड्रोसीडिंग एक प्रभावी उपाय साबित हो सकता है। यह न केवल तेजी से वन क्षेत्र की पुनर्स्थापना करता है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में भी सहायक होता है।

हाइड्रोसीडिंग क्या है?

हाइड्रोसीडिंग में बीज, पानी, उर्वरक, और विभिन्न प्रकार के बाइंडर और मल्च को मिलाकर एक मिश्रण तैयार किया जाता है। इस मिश्रण को एक विशेष पंप की सहायता से जमीन पर छिड़का जाता है। इस प्रक्रिया से बीजों को जमीन में जल्दी जमने और बढ़ने में मदद मिलती है। हाइड्रोसीडिंग के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्री में हाइड्रोजेल, लकड़ी का गूदा, और जैविक उर्वरक शामिल होते हैं, जो मिट्टी की नमी को बनाए रखने और बीजों को पोषण प्रदान करने में सहायक होते हैं।

वन संरक्षण में हाइड्रोसीडिंग का महत्व

1. **तेजी से पुनर्स्थापनः** हाइड्रोसीडिंग के माध्यम से बड़ी मात्रा में बीजों को एकसाथ बोया जा सकता है, जिससे वन क्षेत्रों का तेजी से पुनर्स्थापन संभव होता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया में जंगल की आग के बाद बड़े पैमाने पर पुनर्स्थापन कार्य में इस तकनीक का उपयोग किया गया है। इस प्रक्रिया से प्रभावित क्षेत्र में तेजी से हरियाली वापस आई और पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित किया जा सका।

2. **मिट्टी का संरक्षणः** हाइड्रोसीडिंग के दौरान उपयोग किए जाने वाले बाइंडर मिट्टी को स्थिर रखते हैं और उसे कटाव से बचाते हैं। यह विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में उपयोगी है, जहां भारी वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव एक बड़ी समस्या है। इस तकनीक के माध्यम से मिट्टी की स्थिरता बढ़ती है और भूमि की उत्पादकता में सुधार होता है।

3. **जैव विविधता का संरक्षणः** इस तकनीक से विभिन्न प्रकार के पौधों को एक साथ बोया जा सकता है, जिससे जैव विविधता बनी रहती है और पारिस्थितिकी तंत्र मजबूत होता है। विभिन्न देशों में, विभिन्न प्रजातियों के पौधों के बीजों का उपयोग करके हाइड्रोसीडिंग की गई है, जिससे जैव विविधता को बनाए रखने में मदद मिली है। इससे वन्यजीवों के लिए भी आवास की बहाली होती है, जो पारिस्थितिक संतुलन के लिए आवश्यक है।

4. **पानी की बचतः** हाइड्रोसीडिंग में पानी का उपयोग संतुलित तरीके से किया जाता है, जिससे पानी की बचत होती है। यह सूखे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है। इस तकनीक में उपयोग किए जाने वाले हाइड्रोजेल और मल्च सामग्री मिट्टी की नमी को बनाए रखते हैं, जिससे पौधों की वृद्धि में मदद मिलती है और जल की कमी वाले क्षेत्रों में भी हरियाली बनी रहती है।

हाइड्रोसीडिंग के लाभ

1. **अधिक प्रभावीः** पारंपरिक विधियों की तुलना में हाइड्रोसीडिंग अधिक प्रभावी और तेज है। उदाहरण के लिए, अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में जंगल की आग के बाद बड़े पैमाने पर पुनर्स्थापन कार्य किया गया, जिसमें हाइड्रोसीडिंग का उपयोग करके तेजी से हरियाली बहाल की गई। इस तकनीक की मदद से बड़े क्षेत्रों को कम समय में हरा–भरा किया जा सकता है।

2. **कम लागतः** बड़े क्षेत्रों के लिए यह तकनीक लागत–प्रभावी होती है। पहाड़ी और दुर्गम क्षेत्रों में पारंपरिक बुवाई महंगी और समय–साध्य हो सकती है, जबकि हाइड्रोसीडिंग इन समस्याओं का समाधान प्रदान करती है। इसके अलावा, हाइड्रोसीडिंग से संबंधित उपकरण और सामग्री की उपलब्धता बढ़ने से लागत में भी कमी आई है।

3. **कठिन भूभागों में उपयोगीः** पहाड़ों, ढलानों और अन्य कठिन भूभागों में हाइड्रोसीडिंग आसानी से की जा सकती है। पारंपरिक विधियाँ इन क्षेत्रों में कठिन हो सकती हैं, लेकिन हाइड्रोसीडिंग की विशेष तकनीक इन चुनौतीपूर्ण परिदृश्यों में भी काम करती है। इससे ढलानों और अस्थिर भूभागों पर वनस्पति का तेजी से विकास संभव होता है।

4. **समान वितरणः** बीज, उर्वरक और मल्च का समान वितरण होता है, जिससे पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। यह विशेष रूप से उन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है जहां मृदा की गुणवत्ता असमान होती है। समान वितरण से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं और वे तेजी से विकसित होते हैं।

हाइड्रोसीडिंग के नुकसान

1. **प्रारंभिक लागतः** शुरुआत में उपकरण और सामग्री की लागत अधिक हो सकती है। हालांकि लंबे समय

में यह तकनीक लाभकारी होती है, परंतु प्रारंभिक निवेश एक बड़ी चुनौती हो सकता है। विशेषकर छोटे किसानों और वन विभागों के लिए यह एक बाधा हो सकती है।

2. **निरंतर देखभालः** बुवाई के बाद क्षेत्र की निरंतर देखभाल आवश्यक होती है। हाइड्रोसीडिंग के बाद, नियमित पानी देने और उर्वरक की आवश्यकता होती है, जिससे छोटे किसान और वन विभाग के लिए अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता हो सकती है। बिना उचित देखभाल के, बीजों का अंकुरण और वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

3. **मौसम में निर्भरताः** बारिश और अन्य मौसमी परिस्थितियों का प्रभाव इस तकनीक पर पड़ सकता है। यदि हाइड्रोसीडिंग के तुरंत बाद भारी बारिश होती है, तो बीज बह सकते हैं और प्रक्रिया विफल हो सकती है। इसी प्रकार, अत्यधिक सूखे मौसम में भी बीजों का अंकुरण बाधित हो सकता है।

4. **विशेषज्ञता की आवश्यकताः** हाइड्रोसीडिंग के लिए विशेष ज्ञान और तकनीकी विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। हर कोई इस तकनीक का उपयोग सही तरीके से नहीं कर सकता, इसलिए इसके लिए प्रशिक्षित पेशेवरों की आवश्यकता होती है। बिना उचित प्रशिक्षण के, हाइड्रोसीडिंग की प्रक्रिया सही तरीके से नहीं की जा सकती और परिणामस्वरूप, अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं हो पाते।

उदाहरण और सफलता की कहानियाँ

अमेरिका के कैलिफोर्निया में जंगल की आग के बाद हाइड्रोसीडिंग का सफल उपयोग हुआ है। इस तकनीक से आग से प्रभावित क्षेत्रों में तेजी से हरियाली बहाल की गई, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने में मदद मिली। इस तकनीक का उपयोग करने से न केवल मिट्टी के कटाव को रोका गया, बल्कि वन्यजीवों के लिए आवास भी बहाल हुए। इसी तरह, ऑस्ट्रेलिया में भी खनन क्षेत्रों की पुनर्स्थापना के लिए हाइड्रोसीडिंग का उपयोग किया गया है। खनन गतिविधियों के कारण प्रभावित भूमि पर इस तकनीक का उपयोग कर तेजी से वनस्पति बहाल की गई, जिससे पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में मदद मिली।

हाइड्रोसीडिंग का भारतीय संदर्भ में उपयोग

भारत में, वन संरक्षण और पुनर्स्थापन के संदर्भ में हाइड्रोसीडिंग की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। भारत में वनों की कटाई और मिट्टी के कटाव की समस्याएं व्यापक हैं। उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, और अन्य पहाड़ी राज्यों में, हाइड्रोसीडिंग का उपयोग करके वन क्षेत्रों की पुनर्स्थापना में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की जा सकती है।

भारत में हाइड्रोसीडिंग के लाभ

1. **मिट्टी का कटाव रोकनाः** भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में भारी वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव एक बड़ी समस्या है। हाइड्रोसीडिंग के माध्यम से मिट्टी को स्थिर रखने और कटाव को रोकने में मदद मिल सकती है।

2. **वन क्षेत्रों की पुनर्स्थापनाः** हाइड्रोसीडिंग का उपयोग करके बड़े पैमाने पर वन क्षेत्रों को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। इससे वन्यजीवों के आवास की बहाली और पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूत करने में मदद मिलेगी।

3. **जल संरक्षणः** हाइड्रोसीडिंग में उपयोग किए जाने वाले हाइड्रोजेल और मल्च सामग्री मिट्टी की नमी को बनाए रखते हैं, जिससे सूखे क्षेत्रों में जलसंरक्षण होता है।

4. **स्थानीय प्रजातियों का उपयोगः** हाइड्रोसीडिंग में स्थानीय प्रजातियों के बीजों का उपयोग किया जा सकता है, जिससे जैव विविधता बनी रहती है और पर्यावरणीय संतुलन में मदद मिलती है।

भारत में हाइड्रोसीडिंग की चुनौतियाँ

1. **प्रारंभिक निवेशः** हाइड्रोसीडिंग के लिए आवश्यक उपकरण और सामग्री की लागत उच्च हो सकती है, जिससे इसे बड़े पैमाने पर लागू करने में कठिनाई हो सकती है।

2. **प्रशिक्षण और विशेषज्ञताः** हाइड्रोसीडिंग के सफल उपयोग के लिए प्रशिक्षित पेशेवरों की आवश्यकता होती है। ग्रामीण और पहाड़ी क्षेत्रों में इस तकनीक के बारे में जागरूकता और प्रशिक्षण की कमी हो सकती है।

3. **मौसमी चुनौतियाँः** भारत में मौसम की विविधता के कारण हाइड्रोसीडिंग के परिणाम विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न हो सकते हैं। उचित समय पर सही तरीके से हाइड्रोसीडिंग करना आवश्यक है, अन्यथा परिणाम असंतोषजनक हो सकते हैं।

निष्कर्ष

हाइड्रोसीडिंग वन संरक्षण के लिए एक प्रभावी और उपयोगी तकनीक है, विशेष रूप से भारत जैसे देश में जहां वनों की कटाई और मिट्टी का कटाव बड़ी समस्याएँ हैं। हालांकि इसके कुछ नुकसान भी हैं, लेकिन सही तरीके से उपयोग करने पर इसके लाभ अधिक हैं। यह तकनीक न केवल वन क्षेत्रों के पुनर्स्थापन में मदद करती है बल्कि जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

वन संरक्षण और पर्यावरण के संदर्भ में, हाइड्रोसीडिंग एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके माध्यम से हम न केवल हमारे वन क्षेत्रों को पुनर्स्थापित कर सकते हैं, बल्कि हमारी धरती को हरा–भरा और समृद्ध बना सकते हैं। आने वाले वर्षों में, हाइड्रोसीडिंग के उपयोग में वृद्धि की उम्मीद है, जिससे हमारे वन और पर्यावरण को नया जीवन मिल सकेगा।

झारखण्ड में मैन्ग्रोव प्रजाति, हेरिटिएरा फाम्स (सुन्दरी) का रोपण

श्री रवि शंकर प्रसाद एवं श्री मंजु एल जोजो
भा.वा.अ.शि.प.- वन उत्पादकता संस्थान, रांची

सुन्दरी एक मालवेसी कुल का वृक्ष है जिसे कई नामों से जाना जाता है। जिसमें मुख्य है सुन्दरी, सुंदर और जेकानाजो। यह मुख्यतः बांग्लादेश और भारत में फैले गंगा और ब्रह्मपुत्र डेल्टा में पाया जाता है। भारत में यह सुंदरबन के जंगलो में बहुतायत से पाया जाता है, यहाँ पर ये प्रजाति 70% क्षेत्रों में आच्छादित है इस कारण ये यहाँ की प्रमुख प्रजाति है। गंगा डेल्टा क्षेत्र जिसे गंगा–ब्रह्मपुत्र डेल्टा, सुंदरबन डेल्टा और बंगाल डेल्टा के नाम से भी जाना जाता है। यह दुनिया का सबसे बड़ा डेल्टा क्षेत्र है। यह कई नदी प्रणालियों के मिलने से बना है, इसमें मुख्य रूप से गंगा और ब्रह्मपुत्र के जल के साथ बंगाल की खाड़ी में मिल जाता है। इसके अलावा यह क्षेत्र दुनिया के सबसे उपजाऊ क्षेत्रों में गिना जाता है, इस कारण इसे 'ग्रीन' डेल्टा भी कहा जाता है। यह भारत में बंगाल के हुगली नदी से लेकर बांग्लादेश के मेघना नदी तक फैला हुआ है। इसका आकार त्रिभुजाकार है। यह लगभग 105000 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है, जो भारत और बांग्लादेश में स्थित है। गंगा की सहायक नदी गोराई – मधुमती इसे दो भागों में विभाजित करती है। भारत के पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश को मिलाकर लगभग 280 मिलियन लोग यहाँ निवास करते हैं। जिसमें भारत के लगभग 180 मिलियन लोग यहां निवास करते हैं, और अपने जीविकोपार्जन के लिये इस पर निर्भर हैं। इसके अलावा 400 मिलियन लोग गंगा बेसिन में रहते हैं जो दुनिया का सबसे बड़ी आबादी वाला नदी बेसिन है। सुंदरबन में पाए जानेवाले वृक्ष प्रजातियों में सुंदरी, मैन्ग्रोव खजूर, मैन्ग्रोव पाम, बांस, गर्जन इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अलावा पक्षियों में चील, कठफोडवा, मैना, किंगफिशर इत्यादि शामिल हैं। सुंदरबन में पाए जाने वाले जन्तुओ में प्रमुख हैं, बंगाल टाइगर, अजगर, तेंदुआ, हाथी, चीतल इत्यादि। यह क्षेत्र हमेशा से बाढ़ और तूफान से प्रभावित रहता है, 1970 में यहाँ पर भोला नाम का तूफान आया था जिसमें गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड के अनुसार 1000000 लोगों की मृत्यु हो गई थी। सुंदरी वृक्ष सुंदरबन डेल्टा में पाए जाने वाला एक मुख्य प्रजाति है यह मुख्यतः दलदली क्षेत्रों में पाया जाता है। सुंदरबन में इस प्रजाति के वृक्षों की अधिकता के कारण इस क्षेत्र का नाम सुंदरबन पड़ा है। इसमें श्वसन जड़ पाए जाते हैं जो इसकी वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, यह इस वृक्ष का विशेष गुण है, इसे निमेटोफोर कहा जाता है। मैन्ग्रोव प्रजाति के वन पूरी दुनिया में उष्णकटिबंध और उपोष्णकटिबंध में मुख्य रूप से पाए जाते हैं परन्तु कुछ समशीतोष्ण क्षेत्रों में भी मिलते है। यह प्रजाति नमक की मात्रा को सह लेता है

फूल

इस कारण इसे लवणमृदोद्भिद (हैलोफाइट्स) कहा जाता है, यह ज्वार के थपेड़ो को भी सह लेता है। इस कारण यह कठिन परिस्थितियों में भी तेजी से बढ़ता है। पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखने में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसकी लकड़ी का मुख्य उपयोग फर्नीचर, नांव, पानी जहाज, पुल, पुलिया, फ्लोर और जलावन के काम आता है। इसकी लकड़ी से उच्च गुणवत्ता के चारकोल बनाये जाते हैं। इन्ही सब बातों को ध्यान में रखते हुए इस लेख में इस प्रजाति के बारे में संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है क्योंकि यह मैन्ग्रोव प्रजाति का वृक्ष है, इस कारण यह सुंदरबन डेल्टा पश्चिम बंगाल और अंडबान–निकोबार द्वीप समूह में बहुतायत से पाया जाता है। इसके अलावा यह भारत से सटे बांग्लादेश में पाया जाता है। कुछ वर्ष पहले हमारे संस्थान को फारेस्ट टाइप में कार्य करने का अवसर मिला था इसी अवसर का लाभ उठा कर हमारे संस्थान के वरीय वैज्ञानिक डॉ. अनिमेष सिन्हा के अथक प्रयास से हमारे संस्थान में मैन्ग्रोव की लगभग 21 प्रजातियों का रोपण किया गया था इसमें लगभग 11 प्रजातियां स्वस्थ रूप से फल फूल रहे हैं, और इसमें वैज्ञानिक रूप से लगातार वृद्धि करने का प्रयास निरंतर जारी है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि झारखण्ड के रांची क्षेत्र के लालगुटवा, जहाँ हमारा संस्थान अवस्थित है, यह मैन्ग्रोव क्षेत्र नहीं है इसके बावजूद यहाँ सुंदरी के वृक्ष फल फूल रहे है, और तेजी से वृद्धि कर रहे हैं। हमारे संस्थान में यह वृक्ष 2019–20 से फल– फूल दे रहे हैं इससे यह सिद्ध होता है कि अनुसंधान के क्षेत्र में कोई भी कार्य असंभव नहीं है। शुरुआत के दिनों में इसे स्थापित करने में दलदल बनाये रखने और नमक का प्रयोग किया गया था। परन्तु अब इसकी जरूरत नहीं पड़ती है। वर्तमान में यह वृक्ष और मैन्ग्रोव की अन्य प्रजातियां यहाँ के लोगों के

श्वसन जड़

लिए कोतुहल का विषय बना हुआ है। यहाँ भ्रमण करने वाले विधार्थी, शोधार्थी या विभिन्न क्षेत्रों से आने वाले प्रशिक्षणार्थी और अन्य विशिष्ट लोग इसे देख कर अत्यधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि सुंदरबन और अंडबान निकोबार द्वीप समूह के अलावा यह प्रजाति कहीं और देखने को नहीं मिलता है। इससे यह पता चलता कि चाहे परिस्थितियां, मौसम या जलवायु जो भी हो किसी भी प्रजाति के वृक्ष को नए क्षेत्रों में लगाने का प्रयास किया जा सकता है ताकि जलवायु परिवर्तन के कारण यदि नदी का किनारा या डेल्टा क्षेत्र जलमग्न हो जाता है इसे दूसरे स्थानों में लगाने का प्रयास किया जा सकता है और कई प्रजाति को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है। जैसा की अनुमान है आने वाले दिनों में जलवायु परिवर्तन के कारण जलस्तर बढ़ने के कारण भारत और बांग्लादेश के अनेक लोगों को डेल्टा क्षेत्र छोड़ कर जाना पड़ सकता है यह केवल जलस्तर में 0.5 मीटर की वृद्धि होने से हो सकता है।

तेजपुर, असम में बांस के बीज के उपयोग की परंपरा

डॉ. मिताली मेहता, म. हिबजुर रहमान, श्री लक्ष्य बोरूवा
भा.वा.अ.शि.प.–वर्षा वन अनुसंधान संस्थान,जोरहाट

बांस के बीज, भूसी के साथ (बांए), संसाधित होने के बाद (दाएं)

भूमिका

असम के हरे–भरे राज्य के मध्य में, हरे–भरे परिदृश्यों और जीवंत संस्कृतियों के बीच, तेजपुर का सुरम्य शहर स्थित है। अपनी प्राकृतिक सुंदरता और ऐतिहासिक महत्व से परे, तेजपुर में एक अनूठी परंपरा है जो इसकी स्थानीय विरासत में गहराई से निहित है – बांस के बीजों की खपत। बांस, जो अक्सर अपनी ताकत और अनेक उपयोगों के लिए जाना जाता है, पूरे असम में लोगों के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालाँकि, यह सिर्फ बाँस की कोमल कोंपलें ही नहीं हैं जो स्थानीय लोगों के पाक व्यंजनों में अपना स्थान पाते हैं, बांस के बीज भी पाक–कला संस्कृति में एक विशेष स्थान रखते हैं।

पोषण और सांस्कृतिक महत्व

बांस के बीज न केवल स्वादिष्ट व दुर्लभ व्यंजन हैं, उनके कई पोषण संबंधी लाभ भी हैं। प्रोटीन, फाइबर और आवश्यक खनिजों से भरपूर, वे स्थानीय आहार में पौष्टिकता प्रदान करते हैं। इसके अलावा, ऐसा माना जाता है कि उनमें औषधीय गुण होते हैं, कुछ पारंपरिक चिकित्सक विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए उनका उपयोग करते हैं। अपने पोषण मूल्य के अलावा, बांस के बीज तेजपुर के लोगों के लिए गहरा सांस्कृतिक महत्व रखते हैं। उन्हें अक्सर पारंपरिक असमिया व्यंजनों में प्रमुखता से दिखाया जाता है, जहां उन्हें सूप और स्टू से लेकर स्नैक्स और मिठाई तक विभिन्न प्रकार के व्यंजनों में शामिल किया जाता है। खाने की मेज पर उनकी उपस्थिति समुदाय और प्रकृति के बीच संबंध का प्रतीक है एवं प्रकृति द्वारा प्रदान किए गए उपहार के प्रति सम्मान को दर्शता है।

प्रकृति द्वारा पोषित एक परंपरा

पीढ़ियों से तेजपुर और इसके आसपास के क्षेत्रों के निवासी मौसमी व्यंजन के रूप में बांस के बीजों का संचयन करते रहे हैं। यह परंपरा क्षेत्र की प्राकृतिक लय के साथ जुड़ी हुई है, जिसमें बीज वर्ष के विशिष्ट समय के दौरान पकते हैं, आमतौर पर मई और जून के महीनों के बीच। बीज संचयन की प्रक्रिया एक सामुदायिक कार्य है, जिसमें अक्सर परिवार और पड़ोसी बीज इकट्ठा करते हैं। यह एक श्रमसाध्य कार्य है, जिसमें बांस की शाखाओं से सावधानीपूर्वक बीज निकालने के लिए धैर्य और कौशल की आवश्यकता होती है। हालांकि, इस सदियों पुरानी परंपरा में भाग लेने वालों के लिए अंतिम परिणाम अत्यंत संतोषजनक होता है।

लालित्य

5. होगा सबका उद्धार...!

श्री विवेक चौहान
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हरी–भरी यह धरती, जीवन का आधार,
वन है इस धरा का, सुंदर सजीव हार।
पक्षी, पशु, वृक्ष सभी का है यह परिवार,
वन संरक्षण से ही होगा सबका उद्धार।

पेड़ों की छाया में, मिलती ठंडी बयार,
प्रकृति का है यह उपहार, अनमोल संस्कार।
हरी पत्तियाँ, फूलों का बहार,
वन संरक्षण से ही होगा सबका उद्धार।

सदियों से हैं ये वन, जीवन के हैं अंश,
रखना इनका सम्मान, यही है सच्चा संघर्ष।
वृक्षों की कटाई रोकें, करें हम यह प्रयास,
वन संरक्षण से ही होगा सबका उद्धार।

धरती का हर कोना, हरियाली से हो भरा,
वनों का संरक्षण हो, हर दिल में यह वरा।
प्रकृति का यह नाता, सदा बना रहे अपार,
वन संरक्षण से ही होगा सबका उद्धार।

नयी हरियाली

श्री कृष्ण मुरारी
भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

राही बन के खड़ा पड़ा था,
राह के आगे अडिग पड़ा था।

समझ की नासमझी में फँसा पड़ा था,
मान वही मंजिल अपनी किस्मत की, लगा पड़ा था,
चट्टानों के बीच चट्टानों सा बना पड़ा था।

गिरते पड़ते घायल होते, भीड़ में मैं भी बकरा बना पड़ा था,
उजियारे की चकाचौंध में अंधा बना पड़ा था,
अंधियारे चट्टानों का एक धुमिल दीपक जला पड़ा था।

भूल गया था वो नव पल्लव की लाली को,
बगिये में खिली उन मंजर की डाली को,
भूल गया था अपनी हरित मस्तिष्क की प्याली को,
सजग समन्वित प्रकृति की उस अचूक हरियाली को।

अब मन चला नयी उम्मीद नयी उड़ान तितली मतवाली को,
बुलबुल सी चंचल उड़ते मन की स्वतंत्र बंखयाली को,
जुगनु की जगमगाहट वाली अनदेखी दिवाली को,
चमेली के बाग में कृष्ण रमी राधे मतवाली को।

मथुरा नाचे, कोयल बोले, बादल बरसे,
बरसे मन का उजीयारा,
समझ अपनी स्व–प्रकृति दिख गया वो ध्रुव तारा।

अहंकार क्यों ?

सुश्री अम्बिका बुदियाल
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

हे! मानव, तुझमें हैं क्यों इतना अहंकार?
क्या लेकर आया था, क्या लेकर जाएगा?
क्षणभर की यह जीवन बगिया,
फिर क्यों मन में हैं घमंड की नदियाँ?

सोने–चांदी के महल बनाए,
पर साथ न कुछ भी जाए।
नाम रहेगा तो उस कर्म से,
जो तूने जग में हैं नेक कमाए।

अहंकार ने राजाओं को गिराया,
बड़े–बड़ों का मान मिटाया।
राम ने रावण को हराया,
कंस का भी अंत आया।
फिर भी हे! मानव, तुझमें हैं क्यों इतना अहंकार?

नहीं रहेंगे ये धन, नहीं रहेगी शान,
न रहेगा तेरा ये झूठा गुमान।
हे! मानव, छोड़ दे अब यह अभिमान,
जीवन को कर अपने कर्म से महान।

जिसने किया अहंकार, मिट गया धूल में,
राजा, रंक सभी समा गए भूल में।
रावण, कंस, दुर्योधन भी हार गए,
अपनी करनी के कारण ही सभी मारे गए।
फिर भी हे! मानव, तुझमें हैं क्यों इतना अहंकार?

यदि सामर्थ्य है, तो राह दिखा,
अंधकार में दीप जला।
दीन–दुखियों की सेवा कर,
सद कर्म की गंगा में अपने तन–मन को धुला।

ना कर अभिमान, ना कर अहंकार,
सब है नश्वर, सब है उधार।
नेक राह पर कदम बढ़ा,
मानवता की दीप जला!

जिसने किया अहंकार अपार,
समय ने किया उसका संहार।
अहंकारी सभी मिट गए,
जग में सभी तिरस्कृत हुए।
फिर भी हे! मानव, तुझमें हैं क्यों इतना अहंकार?

दो पल की है यह जिंदगी प्यारी,
मत कर इसे कलंकित भारी।
हे! मानव, तू मत कर इतना अहंकार
छोड़ भी दे अब यह निरर्थक अभिमान।
नेक कर्म कर, बन प्रेरणादायी महान,
इसी से होगा तेरा होगा सच्चा सम्मान!

आखिर कब तक?

श्रीमती सीमा राणा
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

आखिर कब तक अखबार के पन्ने भरे रहेंगे ऐसी खबरों से?

जिन्हें पढ़ कर नजर झुक जाती है शर्म से !

आखिर कब तक किसी की बेटी, किसी की बहन सरोबार रहेगी खून से?

आखिर कब तक मानवता होगी शर्मशार!

जो देखे थे सपने उन्होने, उन सपनों के पूरा होने से पहले बर्बाद हुई

आज फिर मानवता शर्मशार हुई!

आखिर कब तक हम लड़कियों और लड़कों में भेदभाव रखते रहेंगे क्योंकी,

हर बात में तहजीब में रहने की उम्मीद रखी जाती है स्त्रियों से!

क्यूँ नहीं ये तहजीब की उम्मीद जरूरी है मर्दों से?

कहते है लड़कियों के लिए खतरा है देर रात घर से निकलने से

तो ये खतरा कम हो सकता है

अगर हम बिना जरूरी, लड़कों को देर रात निकलने की अनुमति ना दे घर से!

शिक्षा दी जाती है लडकियों को रहने की संस्कार से, तो

लड़कों को भी क्यूँ ना दें संस्कार की शिक्षा प्यार से!

कहते हैं, लड़कियां छेड़छाड़ का शिकार होती हैं छोटे छोटे कपड़े पहनने से

तो पूरे तन ढके हुए नन कैसे नहीं बच पाती है ऐसी छेड़छाड़ से?

ये निर्भर करता है दृष्टि पर हमारी कि ये देखती हैं कैसे?

वरना, कई बार अखबार की सुर्खियां बनती है,

भाई – बहन के रिश्ते को कलंकित करने वाली खबरों से,

इसलिए,

चुप्पी नहीं, आवाज उठाने से,

हर गलत को सही करने से,

मानवता का धर्म निभाने से,

इंसान को इंसान बनाने से,

इस दिशा में शायद हो जाये सुधार, ऐसा कुछ करने से!

साथ ही,

सिखाओ बचपन से सम्मान, संस्कार का पाठ

ताकि होते होते युवा, जायें ये सब जाग

तब शायद बुझ पाये अपराधों की ये आग।

हिंदी का दर्द

श्री विष्णु देव पण्डित
भा.वा.अ.शि.प.-वन उत्पादकता संस्थान, राँची

हूँ हिंदुस्तान की भाषा मगर लगती पराई हूँ ।
मैं मीठी हूँ मगर इनको क्यों लगती खटाई हूँ ।।
जरा बोलकर देखो, जुवां को खोलकर देखो,
तुम्हारे रीत हैं हिंदी, तुम्हारे गीत हैं हिंदी
तो फिर बोल यह हिंदी क्यों लगती पराई हूँ ।
मैं मीठी हूँ मगर...

पड़ा था साल भर मैं तो किसी पन्ने के कोने में,
पड़ा था फाइलों में बंद किसी सुनसान कोने में,
सितम्बर माह जो आया, गई फिर से संवारी मैं,
मुझे भी हो चला गौरव, हूँ सबकी दुलारी मैं,
बता क्या दोष है मेरा, क्यों सबकी नेराई हूँ,
मैं मीठी हूँ मगर इनको ...

गए जो छोड़ इस जग को, दिवस उनकी मनाते हैं,
मैं जिंदा हूँ मगर सब लोग क्यों बरसी मनाते है,
जिगर में मैं बसी लफ्जों से क्यों अंग्रेजी गाते है,
मेरे भरते हुए जख्मों पे क्यों मिर्ची लगाते हैं ,
लगाए हैं यहाँ मेले जैसे मैं परदेस से आई हूँ ,
मै मीठी हूँ मगर इनको...

6. लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून

श्री चन्द्र शर्मा
वैज्ञानिक–सी

डॉ. विश्वजीत शर्मा
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्रीमती सीमा राणा
निजी सचिव

सुश्री अम्बिका बुदियाल
हिंदी अनुवादक (संविदा)

भा.वा.अ.शि.प.-सतत भूमि प्रबंधन उत्कृष्टता केंद्र, देहरादून

डॉ. मनीश कुमार सिंह
वैज्ञानिक–ई

डॉ. हंसराज
वैज्ञानिक–ई

भा.वा.अ.शि.प.- वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

डॉ. अजय ठाकुर
वैज्ञानिक–जी

डॉ. मनीषा थपलियाल
वैज्ञानिक–जी

डॉ माला राठौर,
वैज्ञानिक–एफ

श्री लोकेंदर शर्मा
वैज्ञानिक–सी

श्री धीरज कुमार
वैज्ञानिक–सी

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,
देहरादून, उत्तराखण्ड।

डॉ. आशुतोष पाठक
वैज्ञानिक–सी

डॉ. धीरेन्द्र कुमार
मुख्य सहायक तकनीकी अधिकारी

डॉ. नमिता एन.के.
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री विवेक चौहान
तकनीकी सहायक

श्री कृष्ण मुरारी
तकनीकी सहायक

सुश्री मन्नू सरोज
तकनीकी सहायक

सुश्री दीपिका
तकनीकी सहायक

अतिथि लेखक

डॉ. प्रियंका ठाकुर
वैज्ञानिक–जी

डॉ. अली हैदर शाह
शिक्षण सहायक

डॉ. मनीष कुमार
सहायक प्राध्यापक

डॉ. नितेश कौशल
शिक्षण सहायक

डॉ. रागिनी भारद्वाज
परियोजना सहयोगी II

भा.वा.अ.शि.प.–पारि–पुनर्स्थापन केन्द्र, प्रयागराज

श्रीमती अनिता तोमर
वैज्ञानिक–एफ

डॉ.कुमुद दुबे
वैज्ञानिक–ई

श्री सत्यव्रत सिंह
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री आशीष कुमार
परियोजना सहायक

सुश्री दर्शिता रावत
शोध छात्रा

भा.वा.अ.शि.प.- उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

डॉ. नसीर मोहम्मद
वैज्ञानिक ई

श्री अविरल असैया
वैज्ञानिक–डी

श्री निखिल वर्मा
वैज्ञानिक सी

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री मनीष कुमार विजय
वैज्ञानिक–बी

श्री नीरज प्रजापति
वैज्ञानिक–बी

श्री दर्शन के.
वैज्ञानिक–बी

डॉ. जंगम दीपिका
वैज्ञानिक–बी

श्री सोरभ दुबे
तकनीकी अधिकारी

श्रीमती निकिता राय
वरिष्ठ तकनीशियन

श्री पंकज कुमार
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री प्रियेश दुबे
क्षेत्र सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

श्रीमती देशामीणा
वैज्ञानिक–डी

श्री एस.आर. बलोच
वैज्ञानिक–डी

सुश्री दिव्या गुर्जर
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री सुरेश कुमार मीणा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

सुश्री वीनू महेचा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री गणपत देवड़ा
क्षेत्रीय सहायक

भा.वा.अ.शि.प.- हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

डॉ. संदीप शर्मा
निदेशक (प्रभारी)

डॉ. वनीत जिश्तु
वैज्ञानिक–ई

डॉ. स्वर्णलता
वैज्ञानिक–डी

डॉ. बालकृष्ण तिवारी
वैज्ञानिक–सी

डॉ. जोगिन्द्र सिंह चौहान
मुख्य तकनीकी अधिकारी

डॉ. विनोद कुमार
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री कुलवन्त राय गुलशन
वरिष्ठ तकनीशियन

श्री मंजीत कुमार
वरिष्ठ तकनीशियन

सुश्री मोनिका चौहान
वरिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री नीरज शर्मा
परियोजना सहायक

श्री ब्रिजभुषण
परियोजना सहायक

भा.वा.अ.शि.प.-वन उत्पादकता संस्थान, रांची

श्री रवि शंकर प्रसाद
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री विष्णु देव पण्डित
तकनीकी अधिकारी

श्री मंजु एल. जोजो
परियोजना सहायक

भा.वा.अ.शि.प.-वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

डॉ. एस. सरवणन
वैज्ञानिक–जी

श्री पी. चंद्रशेखरन
मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्रीमती आर. जी. अनीता
तकनीकी अधिकारी

श्रीमती पूंगोंदै कृष्णन
कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी

भा.वा.अ.शि.प.-काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

डॉ. टी.एन. मनोहारा
वैज्ञानिक–एफ

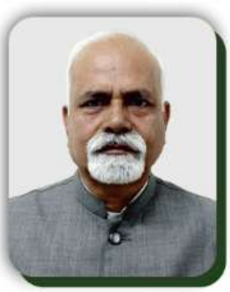

डॉ. एम. बी. सिंह
कनिष्ठ अनुवाद अधिकारी

भा.वा.अ.शि.प.-वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

डॉ. निबेदिता गुरू
वैज्ञानिक–सी

इल्लोरा दत्त बोरा
मुख्य तकनीकी अधिकारी

डॉ. मिताली मेहता
वैज्ञानिक–बी

श्री प्रदीप कुमार हजारिका
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी

श्री अंकुर ज्योति सैकिया
तकनीकी सहायक

म.हिबजुर रहमान
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

श्री लक्ष्य बोरूवा
कनिष्ठ परियोजना अध्येता

भा.वा.अ.शि.प.-वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

डॉ. दीपा एम
वैज्ञानिक–ई

डॉ. पी.एस. श्रीकांत
वैज्ञानिक–बी

श्री एन युवराज प्रवीण
तकनीकी सहायक

श्री डी. शिवसत्य प्रसाद
तकनीशियन

श्री वरूण सिंह
तकनीशियन

प्रकाशितः

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग,

विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

पो.ओ. न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 2480 006 उत्तराखण्ड), भारत

www.icfre.gov.in

Print Vision Dehradun | 0135 2741702